भीतर

7

प्रधानमंत्री की दौड़ में नीतीश भी !

चौथी दुनिया

दिल्ली रविवार 10 मई 2009

हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

15

आतंकवाद को नकार दें

4

मुलायम पर भारी माया

9

काले धन का सफ़ेद सच

14

किसान करेंगे घमासान

मूल्य 20 रुपये

कांग्रेस जानबूझ कर हारना चाहती है

संतोष भारतीय

कांग्रेस क्या जानबूझ कर चुनाव हारना चाहती है? यह सवाल भारतीय राजनीति की परीक्षा का अनिवार्य प्रश्न है, जिसका उत्तर देना ही होगा. और इसी के सही उत्तर पर पंद्रहवीं लोकसभा और नई बनने वाली सरकार का बीजगणित हल हो सकता है. आइए, इसे हल करने की कोशिश करते हैं.

पांच साल पहले कांग्रेस के नेतृत्व में सरकार बनी थी. एक ऐसा गठबंधन बना, जिसमें कांग्रेस का सिर्फ बहुमत था. संसद सदस्यों के बीच नहीं, सिर्फ गठबंधन वाले दलों के बीच यह बहुमत था. यह सरकार कुछ इस अंदाज़ में बनी कि इसमें सारे मंत्री प्रधानमंत्री की तरह व्यवहार करते थे और मनमोहन सिंह उनमें समन्वय करते थे. कह सकते हैं कि वह समन्वय प्रधानमंत्री थे. कांग्रेस के अपने मंत्री भी स्वतंत्र प्रधानमंत्री की तरह व्यवहार करते थे. उस समय के गृह मंत्री शिवराज पाटिल, कांग्रेस के गृह मंत्री कम भाजपा के गृह मंत्री ज्यादा नज़र आते थे. उनके समय में पूरा पुलिस ढांचा, खुफिया ढांचा चरमरा गया था. कोई भी बड़ी घटना हो, वह राजनीतिक संत की तरह बयान देते थे. मानो वे भारतीय समाज की सुरक्षा की पीड़ा से ऊपर ब्रह्मांड में विचरण करते हों.

ऐसे ही उस समय के वित्त मंत्री पी चिदंबरम थे, जो कभी आम जनता की महंगाई की तकलीफ को महसूस ही नहीं कर पाए. इनके समय में भारत के पैसे वाले खुश और आम आदमी दुखी से दुखी होता गया. महंगाई बढ़ती रही, लेकिन वित्त मंत्रालय शेयर के आंकड़ों पर खुश होता रहा. वित्त मंत्रालय को शेयर बाज़ार के दलाल खिलाड़ी घुमाते और बेवकूफ बनाते रहे, पर वित्त मंत्रालय को समझ नहीं आया कि देश के किसानों, नौजवानों और गांव के आर्थिक विकास के लिए भी कोई योजना बनानी है. टैक्स लगाने के नए-नए तरीके निकाले जाने लगे. ऐसे-ऐसे टैक्स, जिनसे आम लोग परेशान हो जाएं पर सरकार के खज़ाने में पैसा न जा पाए. जब चिदंबरम को गृह मंत्री बनाया गया तो वह इसे पचा ही नहीं पाए. अक्सर वह बैंकों की शाखाओं का उद्घाटन गृह मंत्री के नाते करते नज़र आए. दूसरी ओर सौ करोड़ से ज्यादा की आबादी वाले इस देश के पास कोई वित्त मंत्री नहीं है.

इस स्थिति को न मनमोहन सिंह ने संभाला और न ही सोनिया गांधी ने. कमलनाथ जैसे मंत्रियों के बारे में कुछ न कहना ही बेहतर है. मंत्री जी प्रधानमंत्री में तब्दील हो चुके थे, कांग्रेस कार्यकर्ताओं से मिलते ही नहीं थे. कार्यकर्ताओं को छोड़ दीजिए, ये कांग्रेस पार्टी के राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं से भी नहीं मिलते थे. जब कांग्रेस पदाधिकारी सोनिया गांधी से शिकायत करते थे तो उनका जवाब होता था-बात करूंगी, पर स्थितियां बदलीं बिलकुल नहीं. पांच सालों से संगठन की प्रधान खुद सोनिया गांधी हैं. संगठन कहीं नहीं बढ़ा. लोग उन्हें ग़लत जानकारी देते रहे, बहकाते रहे, वह विश्वास करती रहीं. सरकार और संगठन एक ही तरह से काम करते रहे. सरकार ने जो अच्छे काम किए, उनका प्रचार न सरकार ने किया और न संगठन ने. सरकार न दूरदर्शन का इस्तेमाल कर पाई, न सूचना प्रसारण मंत्रालय का और न संगठन का. जब लोगों को जानकारी ही नहीं तो उन्हें फायदा कितना और कैसे पहुंचा, यह सब आकलन का विषय है. उल्टे सरकारी माध्यमों ने सरकार को विलेन जैसा बना दिया.

कांग्रेस ने किसी वर्ग को पिछले पांच सालों में अपने साथ लेने की कोशिश ही नहीं की. दलित, पिछड़े और अल्पसंख्यक, यही उसकी रीढ़ हुआ करते थे कभी. जब से इन वर्गों ने कांग्रेस से नाता तोड़ा, तब से कांग्रेस ने इन्हें वापस लाने की कोई रणनीति ही नहीं बनाई. नरसिंह राव के शासन के पांच साल कांग्रेस ने खोए. उसके सालों बाद केंद्र में सरकार बनी, पर ये पांच साल भी कांग्रेस ने गंवा दिए. उसने न दलित नेता बनाए, न पिछड़ों के और न ही मुसलमानों के. उत्तर प्रदेश में ब्राह्मण भाजपा से कांग्रेस की नाक के नीचे से बसपा के पास चला गया, कांग्रेस कुछ नहीं कर पाई. कांग्रेस के पास शीला दीक्षित जैसी मुख्यमंत्री हैं जिसे ब्राह्मण अपना नेता मानते हैं, पर उनका इस्तेमाल न हो पाया. दिल्ली में मुसलमान मुख्यमंत्री होता और उत्तर प्रदेश में शीला दीक्षित कांग्रेस अध्यक्ष होतीं तो इन लोकसभा चुनावों में कांग्रेस को ब्राह्मणों और मुसलमानों का जबर्दस्त समर्थन मिल जाता.

दरअसल कांग्रेस में यह समझदारी ही नहीं पनप पाई कि उसे भारतीय राजनीति के नए अंतर्विरोधों का कैसे सामना करना है. वह यह भी नहीं समझ पाई कि अब विभिन्न वर्गों के लोग अपने वर्ग के नेता से बात करने में ज़्यादा सहजता महसूस करते हैं. ठीक है कि सोनिया गांधी हैं, पर कितने लोग सोनिया गांधी से मिल पाते हैं? कितने लोग राहुल गांधी से मिल पाते हैं? इसीलिए इन वर्गों की समस्याएं भी कांग्रेस नहीं जानती और इनसे संवाद कैसे किया जाए, यह भी कांग्रेस नहीं जानती. इसीलिए चुनाव जब आते हैं तो कांग्रेस के साथ कमजोर वर्ग कम इनके दलाल ज़्यादा नज़र आने लगते हैं.

उत्तर भारत के राज्यों की ज़मीनी हक़ीकत कांग्रेस अभी तक समझी ही नहीं. पिछले पांच सालों में लगा कि उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बंगाल और उड़ीसा तो उसके एजेंडे से ही बाहर हैं. कांग्रेस बिहार, उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश विधानसभा हारी. इनकी हार के बाद ही यहां लोकसभा चुनावों की तैयारी शुरू हो जानी चाहिए थी, पर लगा कि सभी बेहोश हैं, या इस खुशफहमी में हैं कि जनता की गरज है कि वह उन्हें चुने. इन प्रदेशों के संगठन बद से बदतर होते गए, लेकिन राजनैतिक झगड़े बंद नहीं हुए, दूसरी तरफ केंद्रीय संगठन कान में तेल डाले सोता रहा.

अमेरिकी मंदी के असर से पहले ही भारत के शेयर बाज़ार में गरीबों के पैसे की खुलेआम लूट शुरू हो चुकी थी. यही नहीं, खाद का स्टॉक सरकार के पास ख़त्म हो रहा था और सरकार के सामने संकट था कि किसानों को खाद कैसे पहुंचाए. कीमतें बढ़ रही थीं, चुनाव सर पर था और मनमोहन सिंह सरकार के मंत्री प्रार्थना कर रहे थे कि मध्यावधि चुनाव हो जाए, नहीं तो बढ़ती कीमतें उन्हें बर्बाद कर देंगी. सरकार को खाद जैसी आवश्यक वस्तु के दामों पर छूट देना भारी पड़ रहा था. दूसरी ओर समझदार मंत्री शेयर बाज़ार के बुलबुले के कभी भी फूट जाने का खतरा महसूस कर रहे थे, लेकिन अर्थशास्त्र के जानकार प्रधानमंत्री और वित्त मंत्री मुस्कुराकर आंखें बंद किए इसे और फूलने दे रहे थे. हज़ारों करोड़ का घोटाला हो गया, सत्यम जैसी कंपनी ने सारी दुनिया में भारत की साख को बट्टा पहुंचाया, पर सर्वशक्तिमान वित्त मंत्रालय न इसे भांप पाया और न घोटाला रोक पाया. जिस पार्टी की सरकार अगली बार फिर सत्ता में आना चाहे और ऐसे सरकार चलाए, तो वही दोबारा आने का सपना पाल सकती है जिसके पास दिन में सपना देखने की ताक़त है. भारतीय जनता पार्टी को न मुसलमान वोट देंगे और न धर्मनिरपेक्ष हिंदू, इसी भ्रम ने कांग्रेस को निष्क्रिय रखा होगा. लेकिन कांग्रेस भूल गई कि भाजपा के अलावा भी लोगों के पास क्षेत्रीय पार्टियों के विकल्प मौजूद हैं. इसीलिए उसने विधानसभा चुनावों में हार के बाद न उन राज्यों में कुछ किया और न उन राज्यों में जहां चुनाव नहीं हुए. सबसे आश्चर्य की बात यह है कि कांग्रेस पिछले पांच सालों में तय ही नहीं कर पाई कि जिनके साथ वह सरकार चला रही है, उनके साथ लोकसभा चुनाव लड़ेगी या नहीं. हर जगह भ्रम की स्थिति बना दी गई.

(शेष पृष्ठ 2 पर)

कांग्रेस के अपने मंत्री भी स्वतंत्र प्रधानमंत्री की तरह व्यवहार करते थे. उस समय के गृह मंत्री शिवराज पाटिल, कांग्रेस के गृह मंत्री कम भाजपा के गृह मंत्री ज्यादा नज़र आते थे. उनके समय में पूरा पुलिस ढांचा, खुफिया ढांचा चरमरा गया था. कोई भी बड़ी घटना हो, वह राजनीतिक संत की तरह बयान देते थे. मानो वे भारतीय समाज की सुरक्षा की पीड़ा से ऊपर ब्रह्मांड में विचरण करते हों.

और भी हैं पहेलियां

अगर ग़ैर भाजपा गठबंधन प्रधानमंत्री पद के लिए नाम तय करता है तो उसका आधार क्या होगा, इसे परखना चाहिए. यदि कांग्रेस के एक सौ तीस से ज़्यादा सांसद चुनकर आते हैं तो प्रधानमंत्री पद पर कांग्रेस का ही कोई व्यक्ति बैठेगा. मनमोहन सिंह पहला नाम हैं जिसकी घोषणा सोनिया गांधी ने की है. लेकिन मनमोहन सिंह के नाम पर वामपंथी बिलकुल तैयार नहीं होंगे, इसलिए दूसरा नाम प्रणव मुखर्जी का है. प्रणव मुखर्जी को भी सोनिया गांधी कभी प्रधानमंत्री नहीं बनाना चाहेंगी और न तीसरे व्यक्ति दिग्विजय सिंह को बनाना चाहेंगी. चौथी महिला शीला दीक्षित हैं लेकिन वह भी सोनिया गांधी की लिस्ट में नहीं हो सकतीं, क्योंकि उन्होंने मुख्यमंत्री के तौर पर अपनी छवि बहुत मज़बूत बना ली है. जब उनका इस्तेमाल लोकसभा चुनावों में नहीं हुआ तो उन्हें प्रधानमंत्री पद पर तो कांग्रेस देख ही नहीं सकती. एके एंटनी हो सकते हैं, लेकिन चूंकि वे अल्पसंख्यक समुदाय के हैं इसलिए उन्हें बनाना कांग्रेस के लिए महंगा साबित हो सकता है. आख़िरी नाम बचता है सुशील कुमार शिंदे का, जिनके लिए शरद पवार भी कोशिश करेंगे. शिंदे को वामपंथी भी स्वीकार कर लेंगे और पासवान और मायावती भी उनका विरोध शायद न कर पाएं.

यदि कांग्रेस के एक सौ बीस से कम सांसद आते हैं तो ग़ैर कांग्रेसी प्रधानमंत्री बनेगा और कांग्रेस के सहयोगी दलों की कोशिश होगी कि उस सरकार में कांग्रेस शामिल रहे. यहीं सवाल खड़ा होता है कि कांग्रेस से बाहर का ऐसा कौन व्यक्ति हो सकता है जिसे कांग्रेस स्वीकार कर ले. दरअसल कांग्रेस के सामने राज्यों की समस्या है जहां वह ग़ैर-भाजपाई दलों के मुक़ाबले पर है. और जहां नहीं है, वहां ग़ैर भाजपाई दल आपस में ही मुक़ाबले पर हैं.

उत्तर प्रदेश में मायावती और मुलायम सिंह आमने-सामने हैं. दोनों भाजपा के ख़िलाफ़ हैं, पर दिल्ली की गद्दी के लिए एक-दूसरे का साथ किसी भी स्थिति में नहीं देंगे. इसी तरह से बिहार में लालू यादव और नीतीश कुमार में छत्तीस का आंकड़ा है. दोनों का एक ज़गह आना और एक-दूसरे का समर्थन करना नामुमकिन है. तमिलनाडु में डीएमके और एआईएडीएमके दो ध्रुवों पर हैं, हालांकि दोनों भाजपा के ख़िलाफ़ हैं.

कांग्रेस अपने पूर्वाग्रह के कारण किसी भी कीमत पर शरद पवार का नाम स्वीकार नहीं करेगी और न वह चंद्रबाबू नायडू को स्वीकार करेगी. देवेगौड़ा भी अभी हाल में कर्नाटक में कांग्रेस की हार का कारण बने हैं, इसलिए उनका नाम भी कांग्रेस को स्वीकार नहीं होगा. इसलिए इस स्थिति में नंबर गेम ख़त्म हो जाता है. तब प्रधानमंत्री वह बनेगा जो व्यक्तिगत तौर पर सबको स्वीकार्य होगा. कौन हो सकता है ऐसा व्यक्ति? हालांकि जयललिता व नवीन पटनायक ने शरद पवार का नाम प्रस्तावित किया है, वहीं प्रकाश करात का नाम भी सामने आया है. पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य भी चाहते हैं कि उन्हें प्रधानमंत्री पद के लिए लोग उम्मीदवार मानें. सर्वमान्य नामों में आख़िरी नाम रामविलास पासवान का भी है. लेकिन यह एक ऐसी पहेली है, जिसे हल करने में इस बार कांग्रेस और उसके साथियों को पसीना आ जाएगा. वहीं भाजपा गठबंधन में पहेलियां बननी शुरू हो गईं हैं. देखना है कि कौन कितनी आसानी से उलझनों को सुलझा सकता है. उलझन सुलझाने वाले तीन नाम हैं- सोनिया गांधी, एल के आडवाणी और प्रकाश करात. ग़ैर भाजपा गठबंधन, कांग्रेस के बाहर के व्यक्ति के चुनाव में ए बी वर्धन को भी नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता जो वामपंथी भी हैं और जिन्हें कांग्रेस सहित अन्य दल भी समर्थन दे सकते हैं.

दिल्ली के बाबू

दिलीप चेरियन

पंख फैलाने की ताक में सूचना आयोग

सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संपत्ति के ब्योरे को भी सूचना के अधिकार (आरटीआई) के दायरे में आने की घोषणा के बाद अब मुख्य सूचना आयुक्त वजाहत हबीबुल्लाह चाहते हैं कि कॉरपोरेट घराने भी उनके प्रति जवाबदेह हों.

अभी आरटीआई क़ानून में अधिनियम 8 (डी) के तहत कॉरपोरेट घराने जनहित में ज़रूरी न होने पर अपने कार्य आदि की जानकारी देने से मना कर सकते हैं. लेकिन हबीबुल्लाह साहब और उनके बाबू एक ऐसा प्रस्ताव बनाने में जुट गए हैं जिससे देश भर के कॉरपोरेट घरानों को आरटीआई की हद में ले आया जाए, जैसा दिल्ली और महाराष्ट्र में पहले से है.

मुख्य सूचना आयुक्त इसके साथ ही नए सूचना आयुक्तों की नियुक्ति की योजना भी बना रहे हैं, ताकि अपीलों की लगती लंबी लाइन को खत्म किया जा सके. लेकिन उनकी इस योजना का आरटीआई कार्यकर्ताओं ने जोरदार विरोध किया है. अरुणा राय और शेखर सिंह जैसे कार्यकर्ताओं की मांग है कि नए सूचना आयुक्तों की नियुक्ति की जगह मौज़ूदा आयुक्तों को मिले स्टाफ की संख्या बढ़ाई जाए. उनकी यह भी मांग है कि आयुक्तों की चयन प्रक्रिया को और पारदर्शी बनाया जाए.

चयन प्रक्रिया में आयोग की मौज़ूदा सदस्यता की स्थिति को ध्यान में रखा जाए और आयुक्तों को अलग-अलग क्षेत्रों और कौशल के संतुलन के आधार पर चुना जाए. हालांकि लगता है कि मुख्य सूचना आयुक्त ने इन सारे सुझावों पर ध्यान नहीं दिया है. साफ है, यहां भी पारदर्शिता की ज़रूरत है.

बिना क्लब कहां बतियाएं बाबू

चंडीगढ़ के बाबू निराश हो गए हैं. उन्हें उम्मीद थी कि इस बार तो उनका अपना क्लब बन ही जाएगा, लेकिन उनकी उम्मीदों पर पानी फिर गया है. पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के नोटिस के जवाब में चंडीगढ़ प्रशासन ने कहा है कि ऐसे किसी क्लब की योजना नहीं है. दरअसल ख़बर थी कि 250 साल पुराने एक तालाब पर आईएएस अफसरों का एक क्लब बनेगा. इस पर आसपास के लोगों ने उच्च न्यायालय में जनहित याचिका दायर कर दी थी. मज़े की बात यह है कि अब प्रशासन वहां एक तितलियों का पार्क बनाने की बात कह रहा है.

बताया जा रहा है कि इस तालाब की ज़मीन किसी बगल के गांव की सीमा में है और इसकी पहचान प्रवासी पक्षियों के निवास के रूप में भी की गई है. यहां क्लब बनता तो करीब छह सौ पेड़ कटते और तालाब भी नष्ट हो जाता. तालाब तो बच गया, सो अब उम्मीद है कि प्रसाशन जल्द ही बाबुओं के क्लब के लिए भी कोई स्थान खोज ही लेगा.

साउथ ब्लॉक

अंजुम ए ज़ैदी

ईमानदारी की क़ीमत

एयर इंडिया के चीफ मैनेजिंग डायरेक्टर के पद पर काम कर रहे रघु मेनन को अपनी ईमानदारी की क़ीमत चुकानी पड़ रही है. माना जा रहा है कि मेनन ने अपनी प्रवृत्ति को कायम रखते हुए मंत्री के आदेश को मानने से इंकार किया है. उन्होंने सिंगापुर की एक कंपनी को एयर इंडिया का बड़ा टेंडर देने के लिए किसी प्रकार के अनुग्रह को अस्वीकार कर दिया है. टेंडर पाने के लिए यह कंपनी काफी प्रयत्न कर रही थी, पर योग्यता के अनुकूल न होने के कारण मेनन ने नकार में जबाव दिया. वह बिना किसी पूर्व सूचना के इस पद से निलंबित किए जा चुके हैं. मंत्रालय अब चीफ मैनेजिंग डायरेक्टर के पद के लिए योग्य व्यक्ति की तलाश कर रहा है. इस दौड़ में ग्रामीण विकास मंत्रालय में अतिरिक्त सचिव के पद पर कार्य कर रहे राजस्थान के 1978 बैच के आईएएस अधिकारी अरविंद मायाराम और केरल के 1978 बैच के आईएएस अधिकारी अरविंद जाधव हैं.

लॉबी की कहानी

सेंट्रल बोर्ड ऑफ डायरेक्ट टैक्सेज (सीबीडीटी) एक बार फिर विवादों में है. इस विभाग में सीएस कहलों को सदस्यता लिए हुए महीना बीत जाने के बाद भी पोर्टफोलियो नहीं दिया गया है. देखने में आ रहा है कि समस्या किसी बिजनेस हाउस के प्रभाव में आकर लॉबी बनने की वजह से हो रही है. यह प्रभाव सुधीर चंद्रा को जांच सदस्य या मेंबर पर्सनेल बनाने के लिए है.

सीबीडीटी के चेयरमैन चाहते हैं कि कहलों जांच सदस्य बनें, पर इस पद पर कार्य कर रहे शेख नईमुद्दीन को हटाना इतना आसान नहीं होगा, क्योंकि उन्हें उड़िया लॉबी का साथ मिल रहा है.

वित्त मंत्रालय जाएंगे आशीष कुमार

महाराष्ट्र के 1988 बैच के आईएएस अधिकारी आशीष कुमार सिंह के वित्त मंत्रालय में संयुक्त सचिव का कार्यभार संभालने के आसार हैं. इस समय वह प्रधानमंत्री कार्यालय व डिपार्टमेंट ऑफ पोस्ट एंड टेलीकम्युनिकेशन में मंत्री के निजी सचिव का कार्यभार संभाले हुए हैं. वह भोपाल के 1982 बैच के आईएएस अधिकारी अमिताभ वर्मा के बाद यह कार्यभार ग्रहण करेंगे. भारतीय सांख्यिकी सेवा के 1998 बैच के अधिकारी सुनील कुमार सिंह का नाम भारी उद्योग मंत्रालय में निर्देशक के पद के लिए प्रस्तावित किया गया है. इस पद पर उनसे पहले 1987 बैच के आईआरएस अधिकारी बीबी सिंह अपनी सेवाएं दे रहे थे. उन्होंने वर्ष 2008 में अपना कार्यकाल पूरा किया है.

कांग्रेस जानबूझ कर हारना चाहती है

साथ आने से उसे जीतने का सौ प्रतिशत भरोसा होता. उसने राष्ट्रीय नेता नहीं बनाए. इतना ही नहीं, राज्यों का चुनाव अभियान असंगठित रखा. कांग्रेस ने देश में ऐसा माहौल ही नहीं बनाया कि वह सत्ता प्राप्त करने जा रही है. माहौल केवल सोनिया गांधी या राहुल गांधी के सभा करने से नहीं बनता. माहौल पार्टी बनाती है, ये उसे वोट में तब्दील करने के लिए वोटरों को प्रेरित करते हैं. हालात ये हैं कि कांग्रेस के पास हिंदी में टेलीविज़न पर बोलने वाले नेता ही नहीं हैं. सोनिया जी जाती नहीं, राहुल गांधी क्या बोल देंगे अभी तय नहीं. इसके बाद केवल दिग्विजय सिंह बचते हैं, जिन्हें जाने नहीं दिया जाता. अहमद पटेल, सोनिया गांधी की ज़िम्मेदारी निभाने में अपना सारा वक्त लगा रहे हैं.

राजनीति की परीक्षा के इस पांचवें लेकिन अनिवार्य प्रश्न का विस्तारित जवाब ऊपर दिया है, लेकिन संक्षिप्त जवाब है कि कांग्रेस जानबूझ कर चुनाव हारना इसलिए चाहती है क्योंकि यह उसे सुहाता है, पर इसके बाद भी जनता यदि कांग्रेस को चुन दे, तो यह कांग्रेस की नहीं, जनता की चाह होगी.

editor.chauthiduniya@gmail.com

फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

(पृष्ठ 1 का शेष)

सबसे पहले न्यूक्लियर डील, जिस पर उसे मालूम था कि वामपंथी साथ नहीं हैं, उसने वामदलों का साथ छोड़ा. बाद में सरकार बचाने में मदद करने वाले मुलायम सिंह का साथ छोड़ा. मायावती से समझौते की कोशिश की, लेकिन मायावती ने ही घास नहीं डाली. रामविलास पासवान और लालू यादव को आख़िर तक लटकाने की कोशिश की और यही महाराष्ट्र में शरद पवार के साथ किया. पर जैसे ही पता चला कि शरद पवार और शिवसेना मिल सकते हैं, वैसे ही समझौता कर लिया. लेकिन बिहार में चूक गए. कांग्रेस लालू के साथ समझौता करना चाहती थी, जैसे ही पासवान को पता चला, उन्होंने पहले ही लालू से बात कर ली. कांग्रेस ने दोनों को सबक सिखाने के लिए ज़्यादा जगहों पर उम्मीदवार खड़े कर दिए. बिना यह सोचे कि इससे किसे फायदा और किसे नुकसान होगा. गांवों में एक कहावत है कि पड़ोसी का अपशकुन करने के लिए अपनी आंख फोड़ लो ताकि सुबह जब वह काने को देखे तो उसका दिन ख़राब हो जाए, पर वह भूल जाते हैं कि पड़ोसी का तो दिन ख़राब होता है पर उनकी तो आंख ही फूट जाती है.

हक़ीकत यह है कि कांग्रेस को चुनाव के बाद जिनके साथ सरकार बनानी है, उन्हीं को वह हराने में पूरी ताकत लगा रही है. बेहतर होता कांग्रेस सारे देश में अकेले चुनाव लड़ने की घोषणा करती, अकेले सरकार बनाने के लिए मतदाताओं के पास जाती तो उसे ज़्यादा समर्थन मिलता और चुनाव के बाद जो स्थिति बनती, उसमें सभी को मिलाकर सरकार बनाती या फिर यूपीए के नेता के नाते सभी के साथ सीटों की हिस्सेदारी कर एक सशक्त गठजोड़ के रूप में चुनाव लड़ती. कांग्रेस ने यह नहीं किया और इसीलिए उस पर भाजपा से ज़्यादा उसकी सरकार में सहयोगी दल ही आरोप लगा रहे हैं. कांग्रेस क्यों नहीं समझ सकी कि बीच का रास्ता तो होता ही नहीं. कांग्रेस ने ऐसे किसी राज्य में, जहां एनडीए की सरकार है, सशक्त गठबंधन बनाने की कोशिश ही नहीं की.

इस अनिवार्य प्रश्न का एक हिस्सा है कि अगर कांग्रेस सरकार नहीं बनाती और भाजपा सरकार बनाती है. तो कांग्रेस के नज़रिए से क्या होगा? कांग्रेस का मानना है कि ऐसी स्थिति में आर्थिक संकट की विषम स्थिति का सामना भाजपा व उसके सहयोगियों को करना पड़ेगा. आडवाणी की सारे किसानों का कर्ज़ माफ करने की घोषणा का प्रभाव आर्थिक ढांचे पर पड़ेगा और वह इसे संभाल नहीं पाएगी, क्योंकि भाजपा के पास वैकल्पिक आर्थिक नीति है ही नहीं. उसे आज की नीतियां ही चलानी पड़ेंगी. ऐसी स्थिति में किसानों के विद्रोह जैसी स्थिति का सामना भाजपा को करना पड़ सकता है.

इन्हीं पांच सालों में भाजपा के लालकृष्ण आडवाणी और मुरली मनोहर जोशी की भूमिकाएं सीमित हो जाएंगी और अरुण जेटली व मोदी जैसे नेता प्रथम श्रेणी में शामिल हो जाएंगे. कांग्रेस के भी अर्जुन सिंह, प्रणव मखर्जी और मनमोहन सिंह सहित सत्तर साल से ऊपर के नेता राजनीति से संन्यास ले लेंगे. और तब कांग्रेस में सर्वमान्य नेताओं की जमात राहुल गांधी और प्रियंका गांधी के रूप में सामने आएगी. इनका सामना 2014 में, यदि मध्यावधि न हुए तो अरुण जेटली, रविशंकर प्रसाद और नरेंद्र मोदी जैसे नेताओं से होगा.

अगर कांग्रेस के समर्थन से सरकार बनी और किसी छोटे दल का नेता प्रधानमंत्री बना, तो कांग्रेस न्यूनतम साझा कार्यक्रम के महत्वपूर्ण हिस्सों को दो साल में पूरा करने पर ज़ोर देगी और बाद में मध्यावधि चुनाव करा पूरी तौर पर सरकार बनाना चाहेगी. उस चुनाव में कांग्रेस अकेले जाएगी, ऐसी सरकार में कांग्रेस शामिल नहीं होगी. लेकिन यह मुश्किल है, क्योंकि जो मंत्री हैं वे ज़रूर सोनिया गांधी पर दबाव डालेंगे कि उन्हें मंत्री बनाया जाए. पर कांग्रेस सरकार का हिस्सा बने या नहीं, नतीजा एक ही होगा, मध्यावधि चुनाव.

हालांकि अगर तीसरी स्थिति आती है कि कांग्रेस का अपना सांसद प्रधानमंत्री बनता है, तो वह कौन होगा? प्रणव मुखर्जी पहले उम्मीदवार हो सकते हैं, क्योंकि यह निश्चित है कि मनमोहन सिंह शायद अगले प्रधानमंत्री नहीं होंगे और इसी बात पर नया यूपीए बनेगा. प्रणव मुखर्जी के बाद दूसरा नाम दिग्विजय सिंह का आता है, जो प्रधानमंत्री बन सकते हैं. पर दोनों होंगे अंतरिम प्रधानमंत्री ही. इनकी सरकार में इस बार राहुल गांधी शामिल होंगे.

एक साल के बाद राहुल गांधी पूर्ण रूप से प्रधानमंत्री बन सकते हैं. कांग्रेस नहीं चाहती कि देश की बिगड़ती आर्थिक स्थिति का सामना राहुल गांधी जैसा अनुभवहीन प्रधानमंत्री करें. इसीलिए कांग्रेस ने विधानसभा चुनावों में हार के बाद लोकसभा की तैयारी नहीं की.

किसी भी ऐसे वर्ग को साथ लेने की कोशिश नहीं की, जिसके

हलचल

पिछले दिनों झांसी में हिंदी भाषा के कई साधक एकत्रित हुए. मौका अखिल भारतीय राष्ट्र भाषा सम्मेलन का था. इस अवसर पर हिंदी साहित्य की दशा -दिशा पर चर्चा के साथ-साथ काव्य संगोष्ठी का भी आयोजन हुआ. इस अवसर पर कई हिंदी सेवी भी सम्मानित हुए. पद्मश्री डॉ. श्यामसिंह शशि ने राजकुमार जैन राजन को राष्ट्रभाषा सम्मान से सम्मानित किया.

चौथी दुनिया
हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

आर एन आई रजि.न.45843/86

वर्ष 23 अंक 8, 10 मई 2009

प्रधान संपादक
संतोष भारतीय

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210-211 सेक्टर 63, नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के - 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनाट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय
के -2, गैनन
चौधरी बिल्डिंग
कनाट प्लेस
नई दिल्ली 110001

फोन न.
संपादकीय +91 011 47149999
विज्ञापन +91 011 47149916
प्रसार +91 011 47149905
फैक्स न. +91 011 47149906

नज़र तो रहेगी महामहिम पर

अगर भविष्यवाणी सही हुई, तो पंद्रहवीं लोकसभा के भी त्रिशंकु रहने के पूरे आसार हैं. चुनाव पूर्व का कोई गठबंधन सरकार बनाने की स्थिति में नहीं रहेगा, इसकी आशंका हमें-आपको तो है ही, राष्ट्रपति भवन को भी अवश्य हो रही होगी. इसलिए इसकी पूरी संभावना है कि राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल और उनके सलाहकारों ने अगली सरकार के गठन में आने वाली समस्याओं को लेकर होमवर्क शुरू भी कर दिया हो.

सभी फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

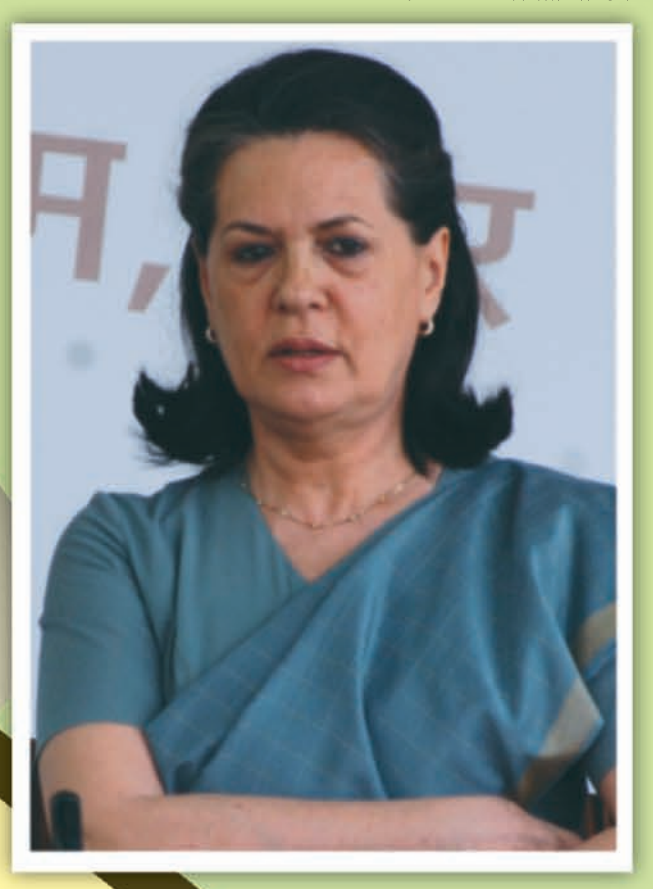

गंगेश मिश्र

माना जा रहा है कि इस बार के आम चुनाव में अंतिम बाज़ी महिलाएं खेलेंगी. लेकिन आम नहीं, ख़ास महिलाएं. वे होंगी– सोनिया गांधी, मायावती, जयललिता और ममता बनर्जी. लोकतंत्र की ताक़त देखिए कि देश के इतिहास में पहली बार पंच बनकर महिलाएं ही करेंगी सत्ता का निर्णय. और, लोकतंत्र की पंचायत में निर्णायकों की संख्या पांच को पूरी करेंगी महामहिम प्रतिभा पाटिल, जो सरपंच होंगी.

फिलहाल जो स्थिति है, उसमें चार पंचों में से दो एक पाले में हैं, तो दो दूसरे में. तृणमूल नेत्री ममता बनर्जी का कांग्रेस से तालमेल है, इसलिए चुनाव बाद भी उन्हें यूपीए की सदस्य ही रहना चाहिए. लेकिन ऐसा होगा ही, यह अभी अंतिम रूप से नहीं कहा जा सकता. इसलिए कि पूर्व में वह एनडीए में भी रह चुकी हैं. यानी सत्ता के आख़िरी समीकरण को देखते हुए वह कुछ भी फैसला कर सकती हैं. कहते भी हैं कि राजनीति में न तो कोई स्थायी दोस्त होता है न दुश्मन. लगभग यही बात बसपा सुप्रीमो व उत्तरप्रदेश की मुख्यमंत्री मायावती और तमिलनाडु की पूर्व मुख्यमंत्री व अन्नाद्रमुक नेत्री जयललिता के लिए भी कही जा सकती है. ये दोनों इस समय तीसरे मोर्चे में हैं. लेकिन पूर्व में मायावती जहां उत्तरप्रदेश में भाजपा के साथ सरकार भी बना चुकी हैं, वहीं केंद्रीय स्तर पर भी एनडीए से थोड़ा-बहुत रिश्ता तो रहा ही है. इस समय वह कांग्रेस की धुर विरोधी बनी बैठी हैं. ऐसे में केंद्रीय सत्ता का झुनझुना उन्हें नहीं लुभाएगा, यह नहीं कहा जा सकता. यही कारण है कि सरकार गठन पर अंतिम निर्णय के लिए सबकी नज़र महिला सरपंच यानी महामहिम प्रतिभा पाटिल पर ही रहेगी.

वैसे अगर चुनाव विश्लेषकों की भविष्यवाणी सही हुई, तो पंद्रहवीं लोकसभा के भी त्रिशंकु रहने के पूरे आसार हैं. चुनाव पूर्व का कोई गठबंधन सरकार बनाने की स्थिति में नहीं रहेगा, इसकी आशंका हमें-आपको तो है ही, राष्ट्रपति भवन को भी अवश्य हो रही होगी. इसलिए इसकी पूरी संभावना है कि राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल और उनके सलाहकारों ने अगली सरकार के गठन में आने वाली समस्याओं को लेकर होमवर्क शुरू भी कर दिया हो.

देश में त्रिशंकु संसद बनने की नौबत कोई पहली बार नहीं आने वाली है. त्रिशंकु संसद बनने के बाद सरकार गठन की समस्या पहली बार 1989 में आई थी. तब नौवीं लोकसभा के लिए चुनाव हुआ था. कांग्रेस सबसे बड़ी पार्टी बनकर आई थी. इस मसले को तब के राष्ट्रपति आर वेंकटरमन ने कैसे निपटाया था, इसका जिक्र उन्होंने 1994 में प्रकाशित अपने संस्मरण– प्रेसिडेंटशियल ईयर्स–में किया है.अपनी दुविधा के बारे में उन्होंने लिखा है–मैं इस दलील में काफी दम देख रहा था कि पराजित हुई सत्तारूढ़ पार्टी को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित नहीं करना चाहिए, क्योंकि इसके लिए वह जनादेश हासिल नहीं कर पाई है. लेकिन साथ ही मैं राष्ट्रपति में निहित विवेक के मापदंडों पर कसे बिना ही व्यर्थ जाने का जोख़िम भी देख रहा था.

विभिन्न संदर्भ ग्रंथों के अध्ययन और सलाह-मशविरे के बाद वह इस नतीजे पर पहुंचे थे कि संसद के त्रिशंकु रहने की सूरत में सबसे बड़ी पार्टी को ही सरकार बनाने के लिए बुलाना चाहिए. तब भी, जब कोई उससे छोटी पार्टी अन्य दलों से समर्थन पत्र जुटाकर बहुमत का दावा ही क्यों न कर रही हो. मज़े की बात यह कि तत्कालीन महामहिम इसके बाद भी दुविधा में पड़े रहे. सिद्धांत रूप में इस फैसले पर अमल करने में उन्हें हिचकिचाहट महसूस हो रही थी. ऐसे में संकटमोचक बन कर आए राजीव गांधी, जिनकी सरकार चुनाव हार गई थी. राजीव गांधी ने उन्हें बताया कि वह सरकार बनाने के लिए दावा नहीं करेंगे.

लेकिन उनके बाद आए विद्वान डॉ.शंकर दयाल शर्मा से राष्ट्रपति भवन में पहली चूक हो गई. यह 1996 की बात है. उन्होंने ऐतिहासिक भूल करते हुए चुनाव में सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरी भारतीय जनता पार्टी के नेता अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया. निश्चय ही उन्होंने इस फैसले पर पहुंचने से पहले पूर्ववर्ती राष्ट्रपति का उदाहरण देखा ही होगा. उनकी व्याख्या भी पढ़ी होगी. फिर भी वह दोनों हालातों के अंतर को पढ़ना भूल गए थे शायद. इसी से वाजपेयी को प्रधानमंत्री नियुक्त करने में उनसे एक अपारदर्शी और ग़ैरसंवैधानिक कदम उठ गया था. जबकि राष्ट्रीय मोर्चे के नेता चुने गए एचडी देवगौड़ा के पास समर्थन के इतने पत्र थे जिससे वह लोकसभा में बहुमत साबित कर देते. दिलचस्प बात यह कि राष्ट्रपति भवन ने जब फैसले को लेकर बयान जारी किया, तो उसकी वजहें नहीं बताई गईं.उसके बाद जो हुआ,उसे कभी कोई भूल नहीं सकता. वाजपेयी की वह पहली सरकार मात्र 13 दिन ही रह सकी. लेकिन तत्कालीन राष्ट्रपति के उस एक ग़लत फैसले पर एक अस्वस्थ परंपरा जरूर बन गई. वैसे लोकसभा की सबसे बड़ी पार्टी के नेता को सरकार बनाने के लिए निमंत्रण देने का सिद्धांत तब लागू होता है, जब अन्य पार्टियां किसी भी सूरत में सरकार बनाने का विकल्प पेश न कर पाएं या मिलकर बहुमत न जुटा लें.

भला हो पूर्व राष्ट्रपति केआर नारायणन का, जिन्होंने मार्च 1998 में आकर प्रधानमंत्री की नियुक्ति संबंधी उस अस्वस्थ परंपरा को तोड़ दिया. इतना ही नहीं, लोगों को उन्होंने अपने फैसले के आधार भी बताए. उस समय राष्ट्रपति भवन ने बयान जारी कर बताया था कि प्रधानमंत्री की पहचान और नियुक्ति से पहले महामहिम ने अपने विवेक की अच्छी-पड़ताल कर ली है. बहरहाल, यह उनका फैसला था. हालांकि उनसे पहले परंपरा यही थी कि प्रधानमंत्री पद के लिए चुने गए व्यक्ति में सदन का विश्वास जीतने की योग्यता होनी चाहिए. लेकिन जब कोई एक पार्टी या चुनाव पूर्व बना कोई गठबंधन बहुमत जुटाने में विफल रहता, तब दूसरे नंबर पर आई पार्टी या गठबंधन को सरकार बनाने का अवसर दिया जाता था. लेकिन प्रधानमंत्री को निश्चित समयसीमा के भीतर विश्वास मत हासिल करना ही पड़ता था. लेकिन इस प्रक्रिया का पालन हमेशा के लिए नहीं हो सकता है. इसलिए कि अब सबसे बड़ी पार्टी या चुनाव पूर्व वाले गठबंधन में शामिल नहीं रहने वाले सांसद भी बहुमत जुटाने में मददगार होते हैं. याद कीजिए बारहवीं लोकसभा का चुनाव. वाजपेयी के पास 240 समर्थक सांसदों की सूची थी. 539 सदस्यीय लोकसभा में बहुमत से यह संख्या कम पड़ रही थी. नियमों का पालन करते हुए तत्कालीन राष्ट्रपति नारायणन ने सभी दलों से सलाह-मशविरा किया. ताकि यह पता चल सके कि सांसदों का बहुमत किसके पक्ष में है. उन्होंने जल्दबाजी में कोई फैसला लेने से मना कर दिया था. बाद में वाजपेयी के और समर्थन जुटा लेने और कांग्रेस अध्यक्षा सोनिया गांधी के इस एलान के बाद कि सरकार बनाने के लिए सांसदों की जरूरी संख्या उनके पास नहीं है, तत्कालीन राष्ट्रपति नारायणन ने वाजपेयी को सरकार बनाने के लिए बुला लिया. सदन में बहुमत साबित करने के लिए उन्हें दस दिन का समय दिया गया. तय समयसीमा में बहुमत साबित कर वाजपेयी ने नारायणन के फैसले और उनके द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया को सही ठहराया.

अब जब पंद्रहवीं लोकसभा के भी त्रिशंकु ही रहना तय माना जा रहा है, तब यह देखना दिलचस्प होगा कि राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल चुनाव के बाद सरकार गठन की कौन सी प्रक्रिया अपनाएंगी.उनके पास दोनों ही तरह के उदाहरण हैं. एक ओर जहां डॉ. शंकर दयाल शर्मा द्वारा 1996 में स्थापित परंपरा है, वहीं बाद में केआर नारायणन द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया है. यह विशुद्ध रूप से महामहिम के विवेक पर निर्भर होगा कि वह क्या फैसला लें. बहुमत तय करने के लिए वह चुनाव बाद बने किसी गठबंधन पर भी विचार कर सकती हैं. यह उनका विशेषाधिकार होगा कि वह चुनाव पूर्व गठबंधन को सरकार बनाने के लिए बुलाएं या चुनाव बाद के गठबंधन को मौका दें. वह चाहें तो सरकार की स्थिरता के लिए बाहर से समर्थन देने जैसी परंपरा को भी ख़ारिज कर सकती हैं.

इसलिए कहना ही होगा कि त्रिशंकु संसद बनने की सूरत में इन महिला नेत्रियों का निर्णय गुल खिला सकता है. लेकिन, अंतिम फैसला तो सरपंच की भूमिका में बैठीं राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल का ही रहेगा. इन महिला पंचों और सरपंच के निर्णय का इंतज़ार आपको ही नहीं, हमें भी रहेगा.

जब पंद्रहवीं लोकसभा के भी त्रिशंकु ही रहना तय माना जा रहा है, तब यह देखना दिलचस्प होगा कि राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल चुनाव के बाद सरकार गठन की कौन सी प्रक्रिया अपनाएंगी.उनके पास दोनों ही तरह के उदाहरण हैं. एक ओर जहां डॉ. शंकर दयाल शर्मा द्वारा 1996 में स्थापित परंपरा है, वहीं बाद में केआर नारायणन द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया है. यह विशुद्ध रूप से महामहिम के विवेक पर निर्भर होगा कि वह क्या फैसला लें.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

मुलायम पर भारी माया

फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

अजय कुमार

अगला प्रधानमंत्री उत्तर प्रदेश से भी हो सकता है. प्रदेश से प्रधानमंत्री बनने वाले आख़िरी नेता थे अटल बिहारी वाजपेयी. उनके बाद प्रधानमंत्री पद की दौड़ में इस बार दो नाम चर्चा में हैं. एक मुलायम और दूसरी मायावती. दोनों ही नेता जोड़तोड़ की राजनीति के सहारे प्रधानमंत्री की कुर्सी हथियाना चाह रहे हैं. उत्तर प्रदेश में राष्ट्रीय दलों का सिकुड़ता जनाधार और क्षेत्रीय दलों के उभार ने राज्य की पूरी तस्वीर ही बदल दी है. तीन दशक पूर्व प्रदेश में मंडल–कमंडल की राजनीति से उभरी जातिवाद की बेल लगातार घनी होती जा रही है. मतदाता भी इस बेल को लहलहाता देख आनंदित हो तो इस बात का अहसास सहज लगाया जा सकता है कि प्रदेश के विकास की स्थिति क्या होगी. जातिवादी राजनीति का ही परिणाम है जो विकास का मुद्दा राज्य में आकर बौना हो जाता है. कांग्रेस और भाजपा जो खेल चोरी–छिपे खेलती थीं, बसपा और सपा इसे खुलेआम खेलने लगी हैं. बसपा और सपा की वोट बैंक की राजनीति के कारण कांग्रेस और भाजपा को यहां अपनी लाज बचानी भी मुश्किल पड़ रही है. भ्रष्टाचार की बात बेईमानी हो गई है. प्रदेश के लिए इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या होगा कि भ्रष्टाचार के तमाम आरोपों में घिरे बसपा सुप्रीमो मायावती और सपा प्रमुख मुलायम से उनकी अकूत संपत्ति के बारे में कोई सवाल–जवाब चुनाव प्रचार के दौरान नहीं हो रहा है. माया और मुलायम जातिवाद और क्षेत्रवाद की राजनीति के सहारे प्रधानमंत्री बनने का सपना देख रहे हैं, जो साकार हो जाए तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए. अब तो यही सवाल उठ रहा है कि माया और मुलायम में कौन रहेगा नंबर–वन और कौन प्रधानमंत्री की कुर्सी के लिए मज़बूत दावेदारी पेश करेगा. वैसे तो नंबर–वन का फैसला 16 मई को ईवीएम के ताले खुलने के बाद होगा, लेकिन राजनीति के जानकार अभी से माया को अव्वल करार दे रहे हैं.

उत्तर प्रदेश की राजनीति में यह पहला मौका है, जब मुलायम एक साथ कई मोर्चों पर माया से पिछड़ते दिख रहे हैं. सपा नेताओं के आपसी टकराव के अलावा कुछ गलत फैसलों और विवादास्पद बयानों के कारण समाजवादी पार्टी की छवि तो ख़राब हुई ही, उसके साथ–साथ उसका मज़बूत वोट बैंक भी बिखर गया. वहीं बसपा सुप्रीमो मायावती ने एक तरफ कुर्सी पर बैठे होने का फायदा उठाया तो दूसरी तरफ मुलायम की छवि को धूमिल करने का भी कोई प्रयास नहीं छोड़ा. चाहे कल्याण का मुलायम से हाथ मिलाना हो या फिर आज़म–अमर की लड़ाई, माया ने मुलायम के घर में लगी आग से हाथ सेंकने में तनिक भी संकोच नहीं किया. सपा प्रमुख घर की आग बुझाने में ही लगे रह गए और माया ने अपनी सारी राजनैतिक रोटियां सेंक डालीं.

माया ने मुलायम के सबसे मज़बूत मुस्लिम वोट बैंक में सेंध लगा दी है. इसके अलावा उनके कई दिग्गज नेताओं को भी अपने पाले में करके बाज़ी का रुख़ बदल दिया. माया ने अपने भरोसेमंद रणनीतिकारों को साथ लेकर ऐसा तानाबाना बुना कि मुलायम एंड कंपनी उसमें फंसती चली गई. बड़बोले अमर सिंह भी चीख़ने–चिल्लाने के अलावा कुछ नहीं कर पाए. वहीं माया एक के बाद एक मोर्चा फतह करती जा रही हैं. माया का सर्वसमाज का नारा खूब चला, लेकिन मुलायम का पिछड़ा–मुस्लिम–यादव गठजोड़ का फार्मूला कल्याण को साथ लेने के बाद भी धरा का धरा रह गया. मुलायम के चेहरे पर पेशानियां देखी जा सकती हैं, अमर–आज़म विवाद उनके गले की हड्डी बन गया है. अमर और आज़म दोनों ही मुलायम के प्रति अपने आप को वफादार बता रहे हैं, लेकिन मौके की नज़ाकत को जानते हुए भी दोनों नेता चुप रहने को तैयार नहीं हैं. अब तो मुलायम भी समय आने पर सब ठीक–ठाक होने की बात कह कर अपना दामन बचाने में लग गए हैं. पार्टी के भीतर के टकराव से सहमे मुलायम अपनी लाज बचाने के लिए हाथ–पैर मार रहे हैं. नेताओं की आपसी खींचतान का ही नतीजा है कि नेताजी करीब–करीब उत्तर प्रदेश में ही सिमट कर रह गए हैं, जबकि बसपा सुप्रीमो मायावती निश्चिंत भाव से पूरे देश में बसपा प्रत्याशियों के समर्थन में भ्रमण कर रही हैं.

माया ने मुलायम के सबसे मज़बूत मुस्लिम वोट बैंक में सेंध लगा दी है. इसके अलावा उनके कई दिग्गज नेताओं को भी अपने पाले में करके बाज़ी का रुख़ बदल दिया. माया ने अपने भरोसेमंद रणनीतिकारों को साथ लेकर ऐसा तानाबाना बुना कि मुलायम एंड कंपनी उसमें फंसती चली गई. बड़बोले अमर सिंह भी चीख़ने–चिल्लाने के अलावा कुछ नहीं कर पाए. वहीं माया एक के बाद एक मोर्चा फतह करती जा रही हैं.

अपने राजनैतिक जीवन की सबसे अहम लड़ाई लड़ रहे मुलायम को चारों तरफ से निराशा ही हाथ लग रही है. लगता है कि लोकसभा के दरवाजे की चाबी वह जितनी मजबूती से पकड़ना चाहते हैं, छीनने वाले उससे भी अधिक ताक़त से उस चाबी को छीन लेना चाहते हैं. लोकसभा चुनाव शुरू होने से पूर्व सपा की स्थिति काफी मज़बूत दिख रही थी, लेकिन ज्यों–ज्यों चुनावी जंग आगे बढ़ी, उनके हाथ से कमान फिसलती गई. परमाणु करार के मुद्दे पर एकजुट हुए कांग्रेसी और समाजवादी नेता माया के लिए कोई खतरा बन पाते, इससे पहले ही सीटों के बंटवारे को लेकर दोनों के बीच तलवारें खिंच गईं. माया के लिए यह राहत भरी बात रही. वर्ना उनकी लड़ाई मुश्किल हो सकती थी. ऐसा नहीं है कि मायावती के पास कोई बहुत बड़ा चमत्कारी नेतृत्व है, लेकिन सपा की मजबूरी यह है कि वह बसपा सरकार की ख़ामियां जनता को गिना ही नहीं पा रही है. बिगड़ती कानून–व्यवस्था को सुधारने का दावा और बाहुबलियों को जेल में डाल देने की कसम खाकर 2007 के विधानसभा चुनाव में जीत हासिल करने वाली मायावती की गोद में आज कई बाहुबली बैठे हैं, लेकिन सपा यह बात जनता को समझा ही नहीं पा रही है. यही बाहुबली जब सपा के साथ थे तो मायावती ने चिल्ला–चिल्ला कर ज़मीन–आसमान एक कर दिया था. इसका ख़ामियाजा मुलायम को सत्ता गंवा कर चुकाना पड़ा.

माया ने सत्ता हासिल करने के बाद कुछ समय तक तो ज़रूर गुंडे–बदमाशों की लगाम कसी, लेकिन चुनावी मौसम आते–आते यह लगाम पूरी तरह से ढीली पड़ गई. इसकी परिणिती कानून–व्यवस्था बिगड़ने के रूप में हुई. प्रदेश में ख़ून–ख़राबा, फिरौती के लिए अपहरण के अलावा छोटे–बड़े अपराधों की बाढ़ आ गई है. बिगड़ी कानून–व्यवस्था का रोना तो चारों तरफ रोया जा रहा है लेकिन माया सरकार की तरफ से उस पर ऐसा पर्दा डाल दिया जाता है कि कोई मुंह खोलना ही नहीं चाहता है. वह माफियाओं को मसीहा बताती हैं, लेकिन वोट बैंक नाराज़ न हो जाए, इसलिए सपा प्रमुख जुबान पर ताला लगाए रहते हैं. वरुण गांधी पर रासुका तामिल करके बसपा सुप्रीमो मुसलमानों का दिल जीत लेती हैं, लेकिन मुलायम रासुका के ख़िलाफ़ बोलने लगते हैं.

उत्तर प्रदेश में दो चरणों का मतदान हो चुका है. शुरुआती ट्रेंड देखें तो यह साफ है कि अबकी मायावती सपा के मुस्लिम वोट बैंक में सेंध लगाने में कामयाब रहीं. आज़म की नाराज़गी का ख़ामियाजा मुलायम को अगले चरणों के मतदान में भी उठाना पड़ सकता है. आज़म की पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मुस्लिम मतदाताओं पर अच्छी पकड़ है, जहां अभी चुनाव होना बाकी है. वैसे भी पश्चिमी उत्तर प्रदेश की डेढ़ दर्जन लोकसभा सीटों पर वैसे भी मुस्लिम मतदाता निर्णायक साबित होते हैं. मुलायम मुस्लिम वोट बैंक के लिए परेशान हैं, वहीं मुलायम के नए दोस्त कल्याण सिंह भाजपा के सर्वनाश की कसम खा रहे हैं. लेकिन वह कैसे करेंगे यह बात किसी को समझ में नहीं आ रही है. कल्याण की बातों पर भरोसा करके उनकी तरफ दोस्ती का हाथ बढ़ाने वाले मुलायम अब कल्याण से कन्नी काटने लगे हैं, लेकिन कल्याण का भूत उनका साथ नहीं छोड़ रहा है.

बसपा सुप्रीमो के हमलावार रुख़ का ही नतीज़ा था कि लोकसभा चुनाव की घोषणा के समय काफी ताक़तवर दिख रही सपा अब पिछड़ती जा रही है. मुलायम कांग्रेस के प्रति नरम और बसपा के प्रति गरम हैं, वह यह बात भूल गए हैं कि यह चुनाव केंद्र की सत्ता के लिए है न कि राज्य सरकार के लिए जनादेश. इतना ही नहीं, समाजवादी नेता चुनाव ख़त्म होने से पूर्व ही चुनाव के बाद की तस्वीर तय करके उस पर होमवर्क करते दिख रहे हैं. वहीं मायावती के मन में यह बात दूर–दूर तक नहीं है कि चुनाव के बाद क्या तस्वीर होगी. वह तो यही मान कर चल रही हैं कि तस्वीर चाहे जो भी बने, उसमें उनको मज़बूती और ठसक के साथ फिट होना है. मुलायम का कांग्रेस के प्रति ढुलमुल रवैया नुकसानदेह हो सकता है. बसपा नेताओं का भरसक प्रयास है कि चुनावी मुक़ाबलों को कांग्रेस और भाजपा पर हमला करके त्रिकोणीय बना दिया जाए, तो सपा की जगह अपने आप खतरे में पड़ जाएगी. चुनाव आयोग पर हमला बोलने के साथ ही मायावती उन्हें कांग्रेस का एजेंट बताने पर तुली हुई हैं, वहीं दिग्विजय के एक बयान को आधार बना कर सीबीआई की विश्वसनीयता पर भी उंगली उठा रही हैं.

मायावती चुनावी जंग जीतने के लिए लगातार रंग बदल रही हैं. बसपा सुप्रीमो को जैसे ही लगा कि उनका सोशल इंजीनियरिंग का फार्मूला ढीला पड़ रहा है, तो उन्होंने दलित कार्ड निकाल लिया. वह भावनात्मक रूप से मतदाताओं को अपने पक्ष में करने की भरपूर कोशिश भी कर रही हैं. फतेहपुर की एक रैली में मायावती ने दलित की बेटी को प्रधानमंत्री बनाने की तान छेड़ कर अपने इरादे साफ कर दिए. वहीं अपनी हत्या कराए जाने की बात करके सहानुभूति बटोरने का भी वह कोई मौका नहीं छोड़ रही हैं.

माया अपने दम पर पूरे देश में प्रचार अभियान छेड़े हुई हैं. उनकी जनसभाओं में भीड़ भी जुट रही है. इससे उनका उत्साहित होना उचित ही है. वह सपा पर नाचने–गाने वालों के सहारे भीड़ जुटाने का अरोप लगाती हैं तो इसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है.

सपा प्रमुख को भी यह बात समझनी होगी कि फिल्मी सितारों के सहारे भीड़ भले ही जुट जाए, लेकिन उसे वोट बैंक में तब्दील करना आसान नहीं होता है. मुलायम सिंह जैसे प्रखर नेता को आज अभिनेताओं का सहारा लेना पड़ रहा है, तो कहीं न कहीं उनके प्रभाव में कमी आने की बात उठनी स्वाभाविक है. मुलायम और माया की जंग में कांग्रेस और भाजपा अपनी चालें चल रही हैं. दोनों को ही इस बात का भरोसा है कि राष्ट्रीय दल होने का फायदा उन्हें ज़रूर मिलेगा, क्योंकि यह मुक़ाबला केंद्र की सत्ता के लिए हो रहा है.

फोटो–*सुनील मल्होत्रा*

feedback.chauthiduniya@gmail.com

मुस्लिम क्षेत्र बढ़ा, उत्साह घटा

ए यू आसिफ़

पंद्रहवीं लोकसभा के लिए चुनाव में तीन चरण 16, 23 और 30 अप्रैल को पूरे हो चुके हैं. बाकी आगामी सात और 13 मई को होंगे. देश की कुल आबादी का 13.4 प्रतिशत मुसलमानों का चुनाव में महत्व पहले भी था, लेकिन कुछ समय पहले हुए परिसीमन के बाद इनकी अहमियत और भी बढ़ गई है. कहा जाता है कि परिसीमन के बाद 10 प्रतिशत मुस्लिम बहुल संसदीय क्षेत्रों की संख्या 119 से बढ़कर 164 हो गई है. शायद यही कारण है कि इस बार राजनीतिक दलों के लिए मुस्लिम मतदाता कुछ ज़्यादा ही अहम बन गए हैं. विशेषज्ञों का विचार है कि भाजपा के घोषणापत्र में इस बार मुस्लिम मुद्दों को शामिल करने के पीछे भी यही कारण था. बहरहाल सवाल यह है कि इस बदली हुई स्थिति का चुनाव के फैसले पर क्या असर पड़ने वाला है. इसका असल जवाब तो मतगणना के बाद ही मिल पाएगा, लेकिन अभी इसका विश्लेषण तो किया ही जा सकता है.

यह सही है कि वर्तमान स्थिति में अगर मुसलमान चाहें तो किसी का पासा पलट सकते हैं, लेकिन ऐसा नहीं होने के पीछे कई कारण हैं. सबसे पहली बात तो यह है कि इनका कोई वोट बैंक नहीं है. दूसरी बात यह है कि मुस्लिम मत प्रतिशत बाकी मतदाताओं से भिन्न नहीं है. सीएसडीएस के अनुसार पिछले चार चुनावों में मुसलमानों का मत प्रतिशत राष्ट्रव्यापी मतप्रतिशत 60 की तुलना में 59 था. इस बार के चुनाव में धार्मिक समुदायों के अलग-अलग मतप्रतिशत तो अभी सामने नहीं आए हैं, लेकिन जो समाचार आ रहे हैं उनसे यह अंदाज़ा मिलता है कि मुसलमानों में उत्साह कम है और मतप्रतिशत में कमी आने का अंदेशा है.

स्मरण रहे कि पिछले लोकसभा चुनाव में मुस्लिम वोट में से 53 प्रतिशत कांग्रेस और उसके सहयोगियों को, 11 प्रतिशत भाजपा और सहयोगियों को तो 16 प्रतिशत समाजवादी पार्टी को मिला था.

जहां तक सामूहिक तौर पर मत देने का मामला है, तो राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश और दिल्ली में यह रुझान देखा जाता है. इसकी वजह कांग्रेस और भाजपा के बीच सीधा मुक़ाबला है और इसके अलावा कोई दूसरा रास्ता मौजूद नहीं है. यही कारण है कि जहां भी तीसरा मोर्चा मौजूद है, वहां सेकुलर मत का विभाजन हो जाता है. उदाहरण के तौर पर आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, असम में कांग्रेस को मुस्लिम वोट पूरा का पूरा नहीं मिल पाता. मुस्लिम मत का यह विभाजन बिहार और उत्तरप्रदेश जैसे राज्यों में भी हो रहा है. यह तथ्य भी कम दिलचस्प नहीं है कि आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, असम और अन्य कुछ राज्यों में कांग्रेस का वोट कट कर दूसरी पार्टियों को जाता है जबकि इस बार बिहार और उत्तरप्रदेश में दूसरी सेकुलर कहलाने वाली पार्टियों का वोट कांग्रेस को मिल रहा है. बीते 23 अप्रैल को दरभंगा में कांग्रेस के अजय जालान को, जो पूर्व भाकपा विधायक रहे हैं और मुसलमानों के बीच अच्छी छवि रखने वाले दिवंगत रमा वल्लभ जालान के सुपुत्र हैं, मुसलमानों के एक वर्ग ने राजद के एमएए फातमी के विरोध में जाकर वोट दिया. ख़बर है कि इतना ही नहीं दोनों पार्टियों के कार्यकर्ताओं के बीच मारपीट भी हुई. यहां भाजपा के कीर्ति आज़ाद मैदान में हैं. दरभंगा में जहां से दिवंगत ललित नारायण मिश्र सांसद हुआ करते थे, कांग्रेस का नामोनिशान मिट गया था लेकिन ऐसा महसूस होता है कि फिर से इसके प्रति सहानुभूति बढ़ी है. बिहार में चार चरणों में से 16 अप्रैल को 13 और 23 अप्रैल को 13 क्षेत्रों में मतदान हो चुके हैं. मुस्लिम मत विभाजन इन सभी 26 क्षेत्रों में से अधिकतर स्थानों पर होने की सूचना है. आमतौर पर यह विभाजन वहीं होता है जहां मुसलमानों की संख्या अधिक है. मुस्लिम जनसंख्या दरभंगा में 22 प्रतिशत, मधुबनी में 18, गोपालगंज में 18, मुजफ्फरपुर में 15, पूर्वी चंपारण में 19, पश्चिमी चंपारण में 21, सीवान में 18, पूर्णिया में 37 प्रतिशत, अररिया में 41, कटिहार में 43 और किशनगंज में 67.58 प्रतिशत है. चौदहवीं लोकसभा में बिहार से कांग्रेस के तीन सांसद थे. इस बार इसके अकेले चुनाव लड़ने के बावजूद इसके मतप्रतिशत पर सकारात्मक प्रभाव पड़ने की खबरें आ रही हैं. वैसे सत्ताधारी जद (यू) के बारे में आम धारणा यही है कि इस बार उसे मुस्लिम मत पहले की तुलना में अधिक मिलेगा. वैसे यह बात तय है कि भाजपा के घोषणापत्र में मुस्लिम मुद्दों की चर्चा से मुससमानों की सोच में कोई अंतर नहीं आया है.

प्रसिद्ध मुस्लिम थिंक टैंक-इंस्टीट्यूट ऑफ ऑबजेक्टिव स्टडीज-के अध्यक्ष और अर्थशास्त्री डॉ. मोहम्मद मंजूर आलम कहते हैं कि इस बार भी मुसलमान सोची समझी रणनीति से ही वोट करेंगे. एक दर्जन राज्यों में जाकर मुस्लिम मतदाताओं का मूड भांपने के बाद उनका कहना है कि मुसलमान इस बात पर हर ज़गह सहमत हैं कि उनका मत उसी पार्टी और उम्मीदवार को मिलेगा जो कि देश के संविधान, धर्मनिरपेक्षता और प्रजातंत्र में विश्वास रखता है. अलीगढ़ में रह रहे अंतरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त अर्थशास्त्री डॉ. मोहम्मद निजातुल्लाह सिद्दकी ज़रा हटकर सोचते हैं. वह कहते हैं कि मुसलमानों की समस्या अन्य देशवासियों से अलग नहीं है. उनका कहना है कि नवीन जिंदल पर फेंका गया जूता वास्तव में यह दर्शाता है कि आज की शासन व्यवस्था या पार्टियां आम आदमी को रोटी, कपड़ा और मकान मुहैया कराने में विफल रही हैं. वह कहते हैं कि इस तरह की समस्याओं से जितना दूसरे समुदाय के लोग पीड़ित हैं, मुसलमान भी उतना ही पीड़ित है. उनके अनुसार, मुसलमान समेत सभी मतदाताओं का दृष्टिकोण मुद्दों के आधार पर तय हो रहा है. डॉ. सिद्दकी की बात से सहमति जताते हुए डॉ. आलम भी कहते हैं कि अज़ीब बात है कि आम आदमी के मुद्दों से राजनीतिक पार्टियों की दिलचस्पी बिलकुल नहीं दिखाई पड़ती है. उनके अनुसार इससे बड़ी विडंबना क्या हो सकती है कि तमाम पार्टियां इसके बजाय एक-दूसरे पर कीचड़ उछालने में लगी हुई हैं. वह कहते हैं कि भाजपा नेता लालकृष्ण आडवाणी ने दरअसल कमज़ोर प्रधानमंत्री की बात उठाकर असल मुद्दे से ध्यान हटाया और इसके बाद अन्य पार्टियां भी बिना सोचे-समझे इसी रास्ते पर चल पड़ी हैं. वह यूपीए की दो पार्टियों के द्वारा बाबरी मस्जिद मुद्दे को उठाकर अपनी ही सहयोगी पार्टी पर आरोप लगाने को भी इसी सिलसिले का हिस्सा मानते हैं.

पहले तीन चरणों में हुए मतदान पर ग़ौर करने पर यह बात समझ में आती है कि परिसीमन के बाद बड़ी मुस्लिम आबादी (10 प्रतिशत से ज़्यादा) वाले क्षेत्र तो बढ़े ही हैं, लेकिन मुस्लिम मत के विभाजन का अंदेशा भी साथ-साथ बढ़ा है और मुस्लिम मतदाताओं में उत्साह कम हुआ है.

अब यह देखना है कि आगामी दो चरणों के मतदान में मुस्लिम रुझान क्या रहता है. मुस्लिम मतदाता के उत्साह में कमी की असली वजह यह मालूम पड़ती है कि मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में विभिन्न राजनीतिक पार्टियां मुसलमानों को उम्मीदवार बना देती हैं. इतना ही नहीं, आज़ाद उम्मीदवार के तौर पर भी कई मुसलमान चुनावी दंगल में कूद पड़ते हैं. पिछले चार चुनावों में भाजपा के सफल उम्मीदवारों में ऐसे कई नाम मिल जाते हैं जिन्हें इस फैक्टर के फलस्वरूप सफलता मिली.

अगर बिहार के किशनगंज क्षेत्र को हम उदाहरण के तौर पर लें तो अंदाज़ा होता है कि 67 फीसदी मुस्लिम आबादी वाले क्षेत्र में अच्छी छवि वाले राष्ट्रीय स्तर के मुस्लिम नेता मौलाना असरारूल हक कासमी (कांग्रेस) को भी इस क्षेत्र में मुस्लिम छात्र और छात्राओं में शिक्षा के प्रसार में ज़बरदस्त भूमिका निभाने के बावजूद इस दुविधा का सामना करना पड़ रहा है. यहां उनके मुकाबले राजद के वर्तमान सांसद तसलीमुद्दीन, जद-यू के महमूद अशरफ और बसपा के जुनैर मैदान में हैं. इन सभी के अपनी बिरादरी की बुनियाद पर अपने-अपने वोट बैंक हैं. एक ओर जहां सारे मुस्लिम नेता आपस में चुनावी जंग लड़ रहे हैं, वहीं दूसरी ओर संघ परिवार के चुने हुए सिकंदर सिंह आज़ाद उम्मीदवार के तौर पर खड़े हैं. दरअसल मुस्लिम मतों के विभाजन की समस्या से सभी परेशान हैं. अगर इसे गंभीरता से नहीं लिया गया तो मुसलमानों में उत्साह की यह कमी मतदान की प्रक्रिया को भी प्रभावित कर सकती है.

पिछले दिनों कुछ मुस्लिम राजनीतिक पार्टियों के बनने और फिर चुनावी मैदान में उतरने से यह समस्या और अधिक उलझती है. क्योंकि इस बार पिछली बार की तुलना में छह के बजाय एक दर्जन मुस्लिम दलों ने अपने-अपने उम्मीदवार खड़े किए हैं. ज़ाहिर सी बात है इससे मत विभाजन की प्रक्रिया को बल ही मिलेगा. मुख्य पार्टियों में इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग(आईयूएमएल), इंडियन नेशनल लीग और असम यूनाइटेड डेमोक्रेटिक फ्रंट (एयूडीएफ) हैं. पिछली बार छह दलों में से केवल आईयूएमएल का एक उम्मीदवार लोकसभा में पहुंच पाया था. वैसे एयूडीएफ ने भी बहुत उत्साहपूर्वक कई उम्मीदवार असम में खड़े किए हैं. अब देखना यह है कि नतीज़ा क्या रहता है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

मतदान का तरीक़ा बदला कई का आधार फिसला

मैं किस वतन की तलाश में यूं चला था घर से कि अपने घर में भी अजनबी हो गया हूं आकर.

मशहूर गीतकार गुलज़ार की ये पंक्तियां हिंदी पट्टी की कई क्षेत्रीय पार्टियों पर सटीक बैठती लग रही हैं. इसलिए कि पंद्रहवीं लोकसभा की आधी से अधिक सीटों का चुनाव संपन्न हो गया है. पहले दो दौर में लोकसभा की कुल 543 सीटों में 265 सीटों के लिए वोट पड़े थे, तो तीसरे दौर में 107 सीटों के 1567 प्रत्याशियों के भाग्य ईवीएम में बंद हो गए. अब तक के चुनाव के मूड को हर दल अपने-अपने अनुकूल मान रहा है, लेकिन हक़ीकत यही है कि मतदाता अबकी अधिक समझदारी से वोट डाल रहा है. शुरुआती आकलनों के उलट और पिछले चुनावों के मुक़ाबले इस बार मतदान का पैटर्न काफी बदला हुआ है. पिछले आम चुनाव से इस बार के लाभ में आ गया है. दूसरे चरण में बिहार में जिन 13 सीटों के लिए वोट पड़े, उनमें से दस सीटें ऐसी थीं जो पिछले चुनाव में लालू और उनके पुराने गठबंधन-यूपीए-के पास थीं. लेकिन अबकी इनमें से कम से कम आधी सीटें जद (यू)-भाजपा के खाते में जाती दिख रही हैं. जैसे मधुबनी को लें. कम्युनिस्टों के गढ़ रहे ब्राह्मण बहुल इस सीट से कांग्रस के प्रत्याशी केंद्रीय मंत्री शकील अहमद हैं, तो भाजपा से पूर्व केंद्रीय मंत्री हुकुमदेव नारायण यादव. अगर मुकाबला दोतरफा रहता, तो जीतने वाले को लेकर कोई संदेह नहीं था. लेकिन राजद से अब्दुल बारी सिद्दीकी के मैदान में उतरते ही सारा समीकरण उलट गया. माई (मुस्लिम-यादव) गठबंधन टूट गया. वैसे सूत्र बताते हैं कि लोजपा नेता रामविलास पासवान अबकी हाजीपुर में कड़े संघर्ष में खुद भी फंस गए लगते हैं. इतना ही नहीं, लालू-पासवान ने बाबरी मस्ज़िद

चुनाव में यह एक व्यापक बदलाव का संकेत है. मतदाताओं के सामने न राष्ट्रीय मुद्दे हैं और न ही वह इसकी मांग कर रहा है. वह नितांत स्थानीय स्तर और निजी अनुभव के आधार पर वोट डाल रहा है. यही कारण है कि इस बार के चुनाव में अचानक धार्मिक और जातिवादी कारक गायब होते दिखे. किसी खास जाति- धर्म बहुल क्षेत्रों में उसी जाति-धर्म के उम्मीदवारों को सभी दलों ने उतार दिया है, जिससे जाति और धर्म के कार्ड बेअसर हो रहे हैं. इसे अधिकतर क्षत्रपों की बौखलाहट में पढ़ा जा सकता है. यह ग़लत नहीं है कि लोग अबकी बेहतर प्रशासन और स्थानीय विकास के आधार पर बदलाव या यथास्थिति के लिए वोट डाल रहे हैं.

जहां तक दूसरे चरण में मतदान की बात है तो भीषण गर्मी के बावज़ूद 55 फीसदी लोग वोट डालने निकले. गर्मी, खेती और शादी का मौसम होने से उत्तरप्रदेश और बिहार में सबसे कम यानी 44 प्रतिशत ही वोट पड़े. आंध्र प्रदेश व त्रिपुरा को छोड़ बाकी आठ राज्यों में भी लगभग यही स्थिति रही. यह सरकारी और ग़ैरसरकारी स्तर पर मतदाताओं को वोट डालने के लिए प्रेरित करने वाले अभियान के बेअसर रहने का प्रमाण भी है.

वैसे आंध्र प्रदेश में 68, महाराष्ट्र में 56, कर्नाटक व गोवा में 55-55 और मध्य प्रदेश में 45 फीसदी लोगों ने वोट डाले. त्रिपुरा में सबसे अधिक 75 फीसदी वोट पड़े. हिंसा इस दौर में भी हुई, लेकिन छिटपुट. बिहार और झारखंड को छोड़ बाकी दस राज्यों में वोट शांतिपूर्ण तरीके से ही पड़े. वैसे जनादेश क्या है, यह तो 16 मई को ही पता चलेगा. उधर, आंध्र प्रदेश विधानसभा के लिए भी दूसरे दौर में चुनाव पूरा हो गया. वहां अंतिम चरण में मतदान का प्रतिशत 67 रहा. हालांकि मुख्यमंत्री वाईएस राजशेखर रेड्डी को सत्ता में वापसी की पूरी उम्मीद है, लेकिन खबरें विधानसभा के त्रिशंकु रहने की संभावना अधिक जता रही हैं.

क्षेत्रीय दलों की बात करें, तो बिहार-उत्तरप्रदेश में नए युग की शुरुआत होती दिख रही है. यहां क्षेत्रीय दलों को ज़ोर का झटका धीरे से लग सकता है. बिहार में कांग्रेस की अगुआई वाले गठबंधन-यूपीए-से अलग होकर चुनाव लड़ने का फैसला लालू-पासवान को भारी पड़ रहा है. इनसे अलग होते ही कांग्रेस को भी राज्य में अपना खोया हुआ जनाधार वापस मिलता लग रहा है. मुस्लिम वोट लालू प्रसाद-रामविलास पासवान वाले चौथे मोर्चे और कांग्रेस में साफ-साफ बंट गए हैं. इससे राज्य में सत्तारूढ़ जनता दल (यू) और भाजपा गठबंधन विध्वंस के लिए कांग्रेस को दोषी ठहरा कर रणनीतिक भूल कर दी है. ऊपर से जद-यू नेता और मुख्यमंत्री नीतीश कुमार का गुड गवर्नेंस लोगों के सिर चढ़कर बोल रहा है. अब तक के चुनाव से लालू-पासवान को यह यकीनन समझ में आ गया होगा कि कांग्रेस को किनारे कर उन्होंने भारी भूल कर दी. कांग्रेस भले ही सीटें अधिक न जीत पाए, लेकिन उनके वोट तो काट ही रही है.

इसी तरह उत्तरप्रदेश में मायावती भले ही कुछ भी दावा करें, सच्चाई यही है कि उनके दलित-ब्राह्मण गठजोड़ में सेंध लग गई है. वह इस बार पहले से अधिक सीटें जीत सकती हैं, पर उतनी नहीं कि लोग चौंक जाएं. दूसरे दौर में कांग्रेस बेहतर दिखी. राहुल गांधी को अमेठी की सीट निकालने में कोई परेशानी नहीं होने वाली. मध्य यूपी में प्रतापगढ़. सुल्तानपुर और बस्ती ऐसी सीटें देखी गईं, जहां कांग्रेस दूसरों से आगे लग रही थी. हालांकि उत्तरप्रदेश के इस इलाक़े में सपा भी मज़बूत नज़र आई. जहां तक भाजपा की बात है तो उसे राजस्थान, पंजाब (अकाली दल के साथ) और कर्नाटक में थोड़ा-बहुत नुकसान हो सकता है, जबकि गुजरात, मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश और छत्तीसगढ़ में उसकी मज़बूत पकड़ बनी रहेगी. वह झारखंड में भी लाभ की स्थिति में है. रही बात उड़ीसा की, तो मत प्रतिशत बढ़ने के बाद भी उसकी सीटें कम हो सकती हैं. राज्य में विधानसभा के चुनाव भी साथ ही हो रहे हैं, जिसके त्रिशंकु रहने के पूरे आसार हैं. हालांकि दूसरे दौर में नवीन पटनायक का बीजू जनता दल पहले से बेहतर स्थिति में रहा.

असम और हरियाणा में भाजपा अपने मित्र दलों के साथ कुछ सीटें जीत सकती है. आंध्रप्रदेश में तेलुगुदेशम नेता चंद्रबाबू नायडू अपने गठबंधन के साथ अन्य से कुछ अधिक सीटें निकाल सकते हैं. यहां अभिनेता चिरंजीवी की प्रजा राज्यम पार्टी ने कांग्रेस का काफी वोट काटा है. सबसे बड़ा उलटफेर तमिलनाडु में लग रहा है, जहां अन्ना द्रमुक सुप्रीमो जयललिता का गठबंधन कांग्रेस-द्रमुक गठबंधन का पत्ता साफ कर सकता है. कांग्रेस को अबतक जिन राज्यों में लाभ मिलता दिख रहा है, वे हैं-पंजाब, केरल, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल (ममता बनर्जी के साथ). महाराष्ट्र में कांग्रेस-राकांपा और शिवसेना-भाजपा गठबंधनों के बीच बराबर की टक्कर चल रही है.

गंगेश मिश्र

feedback.chauthiduniya@gmail.com

इंदू सिंह

बदलाव की दरकार मतदाता की मार

मध्यप्रदेश की 29 में से 13 लोकसभा सीटों पर आधी जनता ने 198 उम्मीदवारों की किस्मत ईवीएम में क़ैद कर दी है. बाक़ी 16 सीटों पर 30 अप्रैल को आर या पार की लड़ाई होगी. यह तो पहले से ही नज़र आ रहा था कि इस बार ज़मीनी स्तर पर लोगों में राजनेताओं और राजनीति को लेकर खास उत्साह नहीं था, लेकिन 13 में से पांच महत्वपूर्ण लोकसभा सीटों-भोपाल, खजुराहो, बालाघाट, बैतूल और विदिशा-में लोगों के उत्साह में कमी साफ नज़र आई है. खजुराहो में यह कमी छह फीसदी रही (पिछली बार के मतदान के मुक़ाबले), तो भोपाल में दो और राजकुमार पटेल की उम्मीदवारी की चुनौती ख़त्म होने से चर्चित विदिशा में पांच फीसदी.

विदिशा में कांग्रेस की चुनौती ख़त्म होने के बाद मतदान में इस कमी को फिर भी समझा जा सकता है. लेकिन भोपाल और खजुराहो में लोगों ने वोट क्यों कम डाले, यह ज़रूर चिंता का विषय होना चाहिए. राजनेताओं व सामाजिक विश्लेषकों को इस बारे में थोड़ी पड़ताल तो करनी ही चाहिए. पहले चरण के चुनाव में एक नई चीज़ सामने आई. वह थी प्रत्याशियों को नकारने की पहल. इससे पहले यह देखा जाता था कि अगर वोटरों को कोई भी प्रत्याशी पसंद नहीं आए तो वह वोट देने ही नहीं जाता था. लेकिन इस बार एक अच्छी पहल हुई है. पहले चरण में 13 में से 12 लोकसभा क्षेत्रों में डेढ़ हज़ार ऐसे लोग घरों से निकले जो मतदान केंद्रों तक गए, अपना नाम दर्ज कराया लेकिन वोट किसी को नहीं दिया. उन्होंने वहां मौजूद अधिकारी के पास रखे रजिस्टर में दस्तख़त के साथ यह लिखा कि कोई भी योग्य उम्मीदवार नहीं है. इस रुझान से साफ पता चल रहा है कि वोटर तेज़ी से जागरूक हो रहे हैं और अब ज़्यादा दिनों तक नेताओं की लोक-लुभावन बातों की चाशनी से मीठे नहीं होने वाले हैं. उनकी कड़वाहट बढ़ेगी ही. यह वर्तमान अवसरवादी और निहित स्वार्थों से प्रेरित राजनीति के लिए खतरे की घंटी है. और, ज़ाहिर तौर पर आने वाले समय में स्वस्थ, जागरूक लोकतंत्र की स्थापना का संकेत भी.

बहरहाल, पहले चरण के मतदान में एक और अच्छी ख़बर यह आई है कि डाकू प्रभावित सतना के बिछियन गांव में लोगों ने डकैतों के फरमान की परवाह न करते हुए जमकर मतदान किया. वहीं विदिशा के चार गांवों-चांदला, महुआखेड़ा, देवलगढ़ और हिम्मतगढ़-के मतदाताओं ने बिजली कटौती व विकास संबंधी अन्य शिकायतों, अनूपपुर के दो गांवों-अमगवां और गुवारी-में ज़मीन अधिग्रहण से नाराज़गी, शहडोल के कोलूहा और जमुड़ी गांवों में पानी, बिजली और सड़क की समस्याओं के चलते, बैतूल के तीन गांवों-रोंडा, करंज और नैगांव-में ताप्ती नदी पर बांध बनाने की मांग जबकि देसली और गवासेन में बिजली की मांग को लेकर मतदाताओं ने वोट नहीं डाले. इसी तरह छिंदवाड़ा के सात गांवों ने बांध न बनने की शिकायत, रीवा के तीन गांवों ने विकास न होने व मंडला के जामगांव के वोटरों ने भी अपने लोकतांत्रिक अधिकारों का प्रयोग करते हुए वोट नहीं डालने का फैसला किया. ज़ाहिर है कि मतदान करने और न करने के हज़ारों लोगों के इन फैसलों से यह साफ हो गया है कि अब वोटर को पहले की तरह विकास के झूठे झांसों से बरगलाया नहीं जा सकता. यहां मतदाता इतने जागरूक तो हो ही गए हैं कि विकास न होने की शिकायत या बिजली, पानी, सड़क, बांध की मांग को लेकर वोट न देने या फिर डाकुओं के फरमान के बावज़ूद वोट देने का अहम फैसला कर सकते हैं. इस समझदारी का आने वाले चुनावों पर काफी गहरा असर पड़ सकता है. अब बात उन 16 सीटों की जिनपर 30 अप्रैल को जनता की मुहर लगनी है. ये हैं भिंड, गुना, दमोह, देवास, रतलाम, धार, खरगोन, खंडवा, सागर, ग्वालियर, इंदौर, उज्जैन, मंदसौर, राजगढ़, टीकमगढ़ और मुरैना. इनमें गुना में जहां केंद्रीय मंत्री व कांग्रेस प्रत्याशी ज्योतिरादित्य सिंधिया भाजपा के नरोत्तम मिश्रा पर भारी पड़ते नजर आ रहे हैं, वहीं उज्जैन में कांग्रेस के प्रेमचंद गुड्डू तथा भाजपा प्रत्याशी व पूर्व केंद्रीय मंत्री सत्यनारायण जटिया के बीच की लड़ाई में अप्रत्याशित उलटफेर की उम्मीद है. इसमें कांग्रेस को फायदा पहुंचने के आसार दिख रहे हैं. गुना में सिंधिया जहां केंद्र से स्वीकृत 1100 करोड़ रुपए की विकास योजनाओं के बल पर जनता से वोट मांग रहे हैं, वहीं नरोत्तम मिश्रा सामंतवाद खत्म करने के लिए स्वाभिमान और सम्मान के नाम पर वोट बटोरने की जुगत भिड़ा रहे हैं. उधर, बुंदेलखंड में परिसीमन के बाद बने नए लोकसभा क्षेत्र टीकमगढ़ में भाजपा, कांग्रेस और सपा के बीच त्रिकोणीय संघर्ष के आसार हैं. इस क्षेत्र की चार विधानसभा सीटों पर भाजपा का कब्ज़ा है और पांचवीं सीट महाराजपुर से जीते निर्दलीय प्रत्याशी के भाजपा को समर्थन देने के बाद भाजपा प्रत्याशी वीरेंद्र कुमार खटीक के हौसले बुलंद हैं. यह अलग बात है कि बाहरी प्रत्याशी होने के नाते वीरेंद्र का यहां विरोध भी हो रहा है, वहीं कांग्रेस के वृंदावन अहिरवार व सपा के चिंतामन कोरी को अपने स्थानीय होने का फायदा मिलने की उम्मीद है.

उधर सागर में भाजपा प्रत्याशी भूपेंद्र सिंह चुनाव प्रचार के मामले में कांग्रेस के असलम शेर ख़ान पर भारी पड़ते नज़र आ रहे हैं. असलम की दिक्कत यह है कि जिस दिन से उनका नाम सागर सीट के लिए घोषित हुआ है, उसी दिन से उन्हें विरोधियों से ज़्यादा कांग्रेसियों के ही विरोध से जूझना पड़ रहा है. हालात इस कदर बिगड़े हैं कि स्थानीय कांग्रेसी नेताओं ने उनके पोस्टर और पुतले तक फूंक डाले हैं. कांग्रेस के इस बिखराव का फायदा भाजपा को मिलना लगभग तय लग रहा है. दमोह में कांग्रेस के चंद्रभान सिंह कम से कम प्रचार के मामले में भाजपा के शिवराज सिंह लोधी से आगे निकलते लग रहे हैं. इसी तरह ग्वालियर से कांग्रेस प्रत्याशी अशोक सिंह के सामने सिंधिया घराने की यशोधरा राजे भाजपा प्रत्याशी के तौर पर कड़ी चुनौती दे रही हैं. हालांकि यशोधरा के ख़िलाफ़ इस क्षेत्र में ज्योतिरादित्य सिंधिया प्रचार कर रहे हैं और लोगों से कह रहे हैं कि अशोक सिंह को जिताने पर उन्हें एक सांसद मुफ्त मिलेगा. यानी अशोक को जिताने पर ज्योतिरादित्य मुफ्त. देखना है कि ग्वालियर की जनता सिंधिया राजघराने के दो सदस्यों में से किसकी बात सुनती है और किसे चुनती है. परिसीमन के चलते निमाड़ की अहम लोकसभा सीट खरगोन के राजनीतिक समीकरण गड़बड़ा गए हैं.

जब कांग्रेस और भाजपा नेताओं ने यहां चुनावी तैयारियां शुरू की थीं तब किसी को अंदाज़ा नहीं था कि यह सामान्य सीट आदिवासी उम्मीदवार के लिए आरक्षित कर दी जाएगी. यही कारण था कि पिछली बार यहां से जीते अरुण यादव को इस बार खंडवा से टिकट दे दिया गया और अब कांग्रेस की नैया पार लगाने की बागडोर तीन बार विधायक रह चुके बाला बच्चन के हवाले कर दी गई है. उनके मुक़ाबले भाजपा के मकनसिंह सोलंकी हैं. यहां के दोनों ही प्रत्याशी बड़वानी जिले के हैं, मुद्दे की बात करें तो यहां राष्ट्रीय मुद्दों के बजाय कर्ज़ माफी और बिजली सरीखे स्थानीय मुद्दे ही हावी हैं. सबसे बड़ी बात यह है कि मतदाताओं में ख़ास उत्साह नज़र नहीं आ रहा. इससे दोनों प्रत्याशियों में कोई भी अपनी जीत के प्रति पूरी तरह आश्वस्त नहीं है. ज़ाहिर है कि लोकतंत्र के राजा यानी आम मतदाता ने इस बार अपनी बेरुख़ी दिखाकर राजनीतिक दलों को खुद को सुधारने का मौका और चेतावनी दे दी है. कम मतदान को भाजपा के पक्ष में बताने वाली सुषमा स्वराज भारतीय लोकतंत्र का कितना भला चाहती हैं यह तो वही जानें, पर इतना ज़रूर तय है कि अगर राजनीतिक दल वादों और लुभावने नारों के गुब्बारों में बैठकर सत्ता की ऊंची उड़ान भरने की अपनी आदत से जल्दी बाज़ नहीं आए तो मतदाता की एक मामूली सी सुई उन्हें यथार्थ के धरातल पर ला पटकने में देर नहीं करेगी.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

फोटो- *पीटीआई*

ज्योतिरादित्य सिंधिया

यशोधरा राजे सिंधिया

विदिशा में कांग्रेस की चुनौती ख़त्म होने के बाद मतदान में इस कमी को फिर भी समझा जा सकता है. लेकिन भोपाल और खजुराहो में लोगों ने वोट क्यों कम डाले, यह ज़रूर चिंता का विषय होना चाहिए. राजनेताओं व सामाजिक विश्लेषकों को इस बारे में थोड़ी पड़ताल तो करनी ही चाहिए.

प्रधानमंत्री की दौड़ में नीतीश भी !

रूबी अरुण

बिहार के मुख्यमंत्री ने कहा कि चुनाव के बाद सभी विकल्प खुले हैं और यह नतीज़ों के बाद तय होगा कि किसके साथ जाया जाए. नीतीश कुमार के इस बयान के बाद सियासी फिज़ाओं में यह बात तैरने लगी है कि वह अपनी शर्तों पर कांग्रेस का हाथ पकड़ सकते हैं और अगर ऐसा होता है तो नीतीश प्रधानमंत्री भी बन सकते हैं. चुनावी नतीज़ों का इंतज़ार है. स्थितियां नीतीश के पक्ष में गोलबंद दिख रही हैं. हालांकि नीतीश फिलहाल इस बात से इत्तफाक नहीं रखने का स्वांग कर रहे हैं. ये अटकलें महज़ शगूफ़ा नहीं हैं. इसकी कई ठोस वजहें भी हैं. जिस तरह के सामाजिक और राजनीतिक समीकरण देश में बन रहे हैं उसमें नीतीश का पलड़ा भारी दिख रहा है. बिहार में नीतीश की स्थिति बेहद मज़बूत दिख रही है. नीतीश के मुक़ाबले वहां यूपीए के अन्य घटक दल, मसलन आरजेडी और एलजेपी की हालत पतली है. यहां तक कि उनकी सहयोगी पार्टी भाजपा भी हाशिए पर है. इससे उत्साहित पार्टी के प्रवक्ता और सांसद शिवानंद तिवारी यहां तक कह गए कि जद-यू बिहार में अपनी तरफ से लालकृष्ण आडवाणी को पीएम इन वेटिंग के रूप में पेश नहीं करेगा. जद-यू ने बिहार में नीतीश कुमार के कामकाज़ और उपलब्धियों को ही अपने चुनाव प्रचार का एजेंडा बनाया है. शिवानंद तिवारी साफ-साफ कहते हैं कि बिहार में नीतीश कुमार की लोकप्रियता किसी भी दूसरे राष्ट्रीय नेता से ज़्यादा है. वह और जद-यू अध्यक्ष शरद यादव अल्पसंख्यकों में भी लोकप्रिय हैं. ऐसी हालत में जद-यू किसी भी क़ीमत पर किसी ऐसे नेता को सामने पेश नहीं करेगी जिसका चेहरा अल्पसंख्यक विरोधी हो. स्पष्ट है कि यह आक्षेप सीधे तौर पर आडवाणी पर है. नीतीश ने अपना यह रुख़ वरुण गांधी के अल्पसंख्यक विरोधी भाषण के ख़िलाफ़ भी बरकरार रखा था. जाहिर है, जद-यू भाजपा के साथ कम से कम अल्पसंख्यकों के विरोध वाले मसले पर अब साथ चलने को तैयार नहीं. और अकेले दम पर नीतीश प्रधानमंत्री की कुर्सी हासिल कर नहीं सकते. सो उन्हें अपनी हसरत पूरी करने की गरज़ से कांग्रेस के साथ आना ही पड़ेगा. खासकर अगर बात धर्मनिरपेक्षता से जुड़ी हो तो.

बिहार में लोकसभा की 40 सीटें हैं. संभावना इस बात की है कि इनमें से ज़्यादातर सीटें नीतीश कुमार यानी जद-यू के खाते में जाएंगी. बिहार में नीतीश ने जो विकास कार्य किए हैं वे मील का पत्थर साबित हो रहे हैं.वर्षों बाद बिहार में विकास की बयार बह रही है. सड़कें बन रही हैं. बिजली मिल रही है. उद्योग-धंधों की बात हो रही है. शैक्षणिक माहौल बन रहा है. औरतें, लड़कियां अब देर रात घर से बाहर आने-जाने में हिचकिचा नहीं रहीं. अपराधियों को उनकी औकात बता दी गई. लोग-बाग यह मानने लगे हैं कि नीतीश के राज में अमन-चैन है. लिहाज़ा किसी और पार्टी को वोट देने के बजाए क्यों न नीतीश को ही आजमाया जाए. लोगों की यही सोच नीतीश की विजय है. वैसे ग़लतियां नीतीश से भी कम नहीं हुईं. उनके मंत्रिमंडल में भी दाग़ी रहे और इस बार लोकसभा चुनाव में उन्होंने कई दाग़ियों को टिकट भी दिया. बावज़ूद इसके, आम जनों में नीतीश की विकास पुरुष की छवि बरकरार है. नीतीश की जीत में उनकी साफ-सुथरी छवि भी बेहद मददगार साबित होगी. नीतीश को आम जनता भ्रष्टाचारी नहीं मानती. इसके अलावा नीतीश ने चुनाव प्रचार में जिस संयम का परिचय दिया है, वह भी उनके क़द को जनता की निग़ाह में ऊपर करता है. लालू यादव और राबड़ी देवी ने नीतीश पर कीचड़ उछाला, पर नीतीश ने कूटनीति से काम लेते हुए उसके जवाब में ओछापन नहीं दिखाया. लोग इससे भी प्रभावित हैं.

दूसरी तरफ नीतीश के बेहद करीबी लोग, मसलन राजीव रंजन सिंह, एनके सिंह और शिवानंद तिवारी सरीखे लोग बड़ी खामोशी से जीत की रणनीति पर लगातार काम कर रहे हैं. उन्हें अच्छी तरह पता है कि नीतीश के प्रधानमंत्री बनने का रास्ता प्रशस्त है. अपने घटक दलों की वजह से परेशानी में पड़ी कांग्रेस नीतीश के ज़रिए उन्हें सबक सिखाने का मंसूबा संजो रही है. हालांकि नीतीश फिलहाल इस बात से सहमति नहीं रखने की बात कर रहे हैं. पर ये अटकलें महज़ शगूफ़ा नहीं हैं. अब एनडीए में रहते नीतीश का यह सपना तो पूरा हो नहीं सकता, क्योंकि यहां लालकृष्ण आडवाणी को यह हरगिज़ क़बूल नहीं होगा. वैसे नीतीश कहते हैं कि एनडीए सत्ता में आता है तो सरकार आडवाणी के नेतृत्व में ही बनेगी. पर अगर ऐसा नहीं होता है तो वह जनता के फैसले का सम्मान करेंगे.राजनीतिक प्रेक्षक जो अनुमान लगा रहे हैं, उसके मुताबिक राजद अध्यक्ष लालू प्रसाद और लोजपा अध्यक्ष रामविलास पासवान नुकसान में रहेंगे. बिहार की कुल 40 सीटों पर लड़ने की वजह से कांग्रेस का प्रदर्शन शायद पहले से कुछ बेहतर हो. यह भी मुमकिन है कि उत्तर प्रदेश में कांग्रेस पहले के मुक़ाबले ज़्यादा सीटें ले आए. पर ये संख्या इतनी नहीं होगी कि कांग्रेस केंद्र में सरकार बनाने की सोच भी सके. तब उसे नीतीश के साथ की ज़रूरत होगी. बिहार में सीटों के बंटवारे के मसले पर पिछले दिनों लालू, रामविलास और कांग्रेस के बीच जो तनातनी हुई उसके बाद उनके बीच आपस में खटास बढ़ गई. लालू ने अपनी पार्टी और साथ आई पार्टियों को असली यूपीए का ख़िताब दे डाला. और तो और, यह भी कह दिया कि उन्हें यूपीए के प्रधानमंत्री के प्रत्याशी के तौर पर मनमोहन सिंह पसंद नहीं. तो इस पर तिलमिलाए कांग्रेस की ओर से विदेश मंत्री प्रणव मुखर्जी ने यह कहने में भी गुरेज़ नहीं किया कि अगली कांग्रेसनीत सरकार में लालू शायद शामिल भी न हों. 1990 में लालू ने कांग्रेस से बिहार की सत्ता छीनी थी, तब से कांग्रेस बिहार में सत्ता से बाहर है. 1991 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस केवल एक ही सीट जीत पाई थी. जबकि पिछले विधानसभा चुनाव में कांग्रेस को 242 में केवल नौ सीटें ही मिली थीं. पिछले बीस सालों से कांग्रेस बिहार में लालू की पिछलग्गू बनी रही और कांग्रेस खोखली होती रही. पिछले लोकसभा चुनाव में भी लालू ने रामविलास पासवान की एलजेपी को आठ और कांग्रेस को महज़ चार सीटें दी थीं. इनमें से एलजेपी ने चार और कांग्रेस ने तीन सीटें जीतीं. उधर,बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार का जलवा पूरे शबाब पर है. बिहार तो उनकी मिल्कीयत है ही,अब जद-यू भी उनकी बेनामी जायदाद बन गई है. पार्टी के दिग्गज नेता भी नीतीश के रहमोकरम पर ही है. होंगे शरद यादव पार्टी के अध्यक्ष, पर फैसले तो नीतीश ही लेते हैं. और जब बात बिहार की हो, तो किसकी मज़ाल जो कोई हेकड़ी दिखा दे.

जार्ज फर्नांडीस जैसे तुर्रम खान नेता के पर कतरते भी नीतीश को देर नहीं लगी. जद-यू के राष्ट्रीय अध्यक्ष शरद यादव के सपने तक नीतीश के गुलाम हैं. शरद यादव की भी हसरत है कि वह प्रधानमंत्री बनें. पर एक तो नीतीश यह नहीं चाहते, दूसरे कांग्रेस या दूसरी पार्टियों को यह मंज़ूर नहीं होगा. बिहार का राजा हिंदुस्तान का बादशाह बनने की राह पर है. नीतीश कितने होशियार राजनीतिज्ञ हैं, इसका अंदाज़ा इसी से लग सकता है कि बिहार में लालू यादव की सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए नीतीश ने जिस भाजपा की मदद ली,आज उन्होंने उसी भाजपा की बिहार में खटिया खड़ी कर दी है. बिहार में एनडीए की सरकार कहने भर को है. वहां है तो सिर्फ और सिर्फ नीतीश की बादशाहत. नीतीश कुमार ने बड़ी ही चालाकी से बिहार में पिछले तीन सालों में भाजपा के ढांचे को तितर-बितर कर दिया. उन्होंने भाजपा के किसी भी नेता को उभरने का कोई मौका नहीं दिया. जिस किसी ने भी उठने की कोशिश की, उसे धराशायी कर दिया. सुशील मोदी बिहार के उप-मुख्यमंत्री हैं और भाजपा के सीनियर नेता. पर नीतीश का तिकड़म ऐसा कि भाजपा के धाकड़ नेता सुशील मोदी सारी सियासत भूल नीतीश की छाया भर बन कर रह गए. नीतीश ने सुशील मोदी का जमकर इस्तेमाल किया. बिहार में भाजपा के जितने कद्दावर नेता थे, सभी को धीरे-धीरे नीतीश ने किनारे लगा दिया. अश्विनी चौबे, नंदकिशोर यादव जैसे धाकड़ नेताओं का विभाग बदल कर उन्हें अपनी हद में रहने की चेतावनी दी, तो अपने अच्छे काम-काज से जनता के बीच पैठ बना रहे मंत्री चंद्रमोहन राय को बाहर का रास्ता दिखा दिया. फिर नीतीश ने विकास यात्रा शुरू की. इस यात्रा में भाजपा के किसी नेता को शरीक नहीं किया. पूरे बिहार में जहां भी गए, अपनी सरकार यानी जद-यू का ही गुणगान किया. लोगों से साफ-साफ कहा कि हमने यानी जद-यू ने बिहार को विकास के रास्ते पर सरपट दौड़ा दिया है, इसलिए आपका वोट तो हमें ही मिलना चाहिए. अब जाहिर-सी बात है कि जनता के मन में जो सकारात्मक छवि बनेगी वह जद-यू की ही होगी. यानी हो गया न भाजपा का बंटाधार. ऐसा नहीं है कि प्रदेश के भाजपा नेताओं ने नीतीश के रवैये का विरोध नहीं किया है. कई बार एनडीए के बीच इस बात को लेकर सर-फुटव्वल की नौबत भी आई, पर भाजपा नेताओं को हासिल कुछ नहीं हुआ. शीर्ष नेतृत्व ने भी इस मसले पर चुप्पी साध रखी है, क्योंकि उसकी अपनी ख्वाहीशें हैं. आडवाणी एनडीए के सहारे ही प्रधानमंत्री की कुर्सी का सपना देख रहे हैं. क्योंकि अटल बिहारी वाजपेयी घटक दलों के सहारे ही देश की गद्दी संभाल सके थे. एनडीए के घटक दलों में यकीकन जद-यू खास अहमियत रखता है. लिहाजा नीतीश कुमार को नाराज़ करने की हिमाकत आडवाणी तो कर ही नहीं सकते. वरना उनके हसीन सपने का क्या होगा. सो इसकी ख़ातिर बिहार में भाजपा का बेड़ा गर्क़ ही सही. यही नहीं, सुशील मोदी को भी मोहरा बनाकर नीतीश ने लालकृष्ण आडवाणी को भी अपने फंदे में कसा हुआ है. बिहार में तो नीतीश की बादशाहत कायम है ही. दूसरी तरफ शरद यादव के जरिए नीतीश एनडीए पर भी काबू करने की फिराक़ में हैं. एनडीए में घटक दलों के संयोजक का महत्व राष्ट्रीय अध्यक्ष से भी ज़्यादा होता है. शरद यादव भले ही एनडीए के संयोजक हैं, पर उनपर दबदबा नीतीश कुमार का ही है. वह वही करते हैं जिसमें नीतीश की सहमति होती है. और जिस तरीके से हालात नीतीश के पक्ष में दिख रहे हैं, कहना ग़लत नहीं होगा कि नीतीश के दोनों हाथों में लड्डू है. नतीज़ों के आने के बाद जो दल नीतीश की शर्तों पर खरा उतरेगा, वह उसके पाले में आ जाएंगे. लोकसभा चुनावों में मनमाफ़िक सीटें पाने के बाद भी प्रधानमंत्री की कुर्सी अगर उनसे छिटक जाती है तो इसमें ग़लती भी नीतीश की ही होगी. अब देखने वाली बात यह होगी कि नीतीश हवा के रुख़ को किस हद तक भांप पाते हैं.

नीतीश कितने होशियार राजनीतिज्ञ हैं, इसका अंदाज़ा इसी से लग सकता है कि बिहार में लालू यादव की सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए नीतीश ने जिस भाजपा की मदद ली, आज उन्होंने उसी भाजपा की बिहार में खटिया खड़ी कर दी है. बिहार में एनडीए की सरकार कहने भर को है.

फोटो- *प्रभात पाण्डेय*

ruby.chauthiduniya@gmail.com

लटके-झटके भी आज़मा रहे हैं नीतीश

इस बार के लोकसभा चुनाव में जितने लटके-झटके बिहार में इस्तेमाल हो रहे हैं, उतने शायद ही किसी अन्य राज्य में हो रहे हों. साम, दाम, दंड और भेद-यहां सब कुछ देखने को मिल रहा है. इसमें कोई दल किसी से पीछे नहीं है. कई बार तो यह सब नौटंकी के स्तर पर पहुंच जाता है.

इस सबकी शुरुआत यूपीए से हुई. बिहार में उसके दोनों घटक दलों ने जिस तरह से कांग्रेस को गच्चा दिया, वह किसी फिल्म के हास्य दृश्य जैसा ही था. इसके बाद दोनों ओर से शुरू हुए आरोप-प्रत्यारोप के दौर ने और कमाल कर दिया. रही-सही कसर गंभीर किस्म के राजनेता माने जाने वाले नीतीश कुमार पूरी कर रहे हैं. इसमें कोई दो राय नहीं कि इस बार का लोकसभा चुनाव मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के लिए मूंछ की लड़ाई है. राज्य में दशकों से चले आ रहे जातिगत समीकरणों से उनका विकास का मुद्दा सीधे भिड़ रहा है. इस सिलसिले में राज्य में सत्तारूढ़ जनता दल (यू) और भाजपा गठबंधन का पलड़ा भारी रखने के लिए कई चुनावी टोटकों का भी इस्तेमाल कर रहे हैं. बेतिया संसदीय क्षेत्र से चुनाव लड़ रहे प्रत्याशियों के घरों और अन्य ठिकानों पर पड़े छापे इसकी मिसाल हैं. राज्य पुलिस की ओर से छापे की यह कार्रवाई दूसरे चरण के मतदान से ऐन पहले की गई थी. सरकार पर कोई आरोप न लगे, इसलिए भाजपा उम्मीदवार संजय जायसवाल के घर पर भी पुलिस ने छापा मारा. ग़ौरतलब है कि यहां चौथे मोर्चे की ओर से लोजपा के टिकट पर मशहूर फिल्मकार प्रकाश झा और कांग्रेस से साधु यादव चुनाव लड़ रहे हैं. कहना न होगा कि साधु यादव राजद सुप्रीमो लालू प्रसाद यादव के साले हैं और उनसे बग़ावत करके कांग्रेस प्रत्याशी बन गए हैं. चुनाव से कुछ दिन पहले तक यहां मुक़ाबला प्रकाश झा और साधु यादव के बीच ही माना जा रहा था. भाजपा उम्मीदवार संजय जायसवाल पूरी मशक्कत के बाद भी मुक़ाबले में नहीं आ पा रहे थे. लिहाजा उनके लिए सरकारी तंत्र का इस्तेमाल किया गया. कुछ इस तरह कि सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे. और, वाकई वही हुआ जो नीतीश कुमार और उनके सलाहकार चाहते थे. छापे में प्रकाश झा के एक ठिकाने से दस लाख तो साधु यादव के यहां से मात्र ढाई लाख रुपये मिले. लेकिन भाजपा प्रत्याशी संजय जायसवाल के घर से पुलिस ने बरामदगी के नाम पर कुछ नहीं दिखाया. प्रकाश झा वाले मामले को स्थानीय से लेकर राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय मीडिया तक में उछाला गया. कोशिश साधु यादव को भी बदनाम करने की थी, लेकिन मात्र ढाई लाख रुपए की बरामदगी ने सरकार के किए-धरे पर पानी फेर दिया. कहना न होगा कि प्रकाश झा हर तरफ भ्रष्टाचारी साबित हो गए. लेकिन इसका लाभ कांग्रेस प्रत्याशी साधु यादव को नहीं हुआ. इसका पूरा लाभ हुआ भाजपा प्रत्याशी संजय जायसवाल को. मतदाताओं के बीच इसे तेजी से फैलाया गया कि जायसवाल के यहां छापे में कुछ नहीं मिला. यानी मुक़ाबले के तीन बड़े खिलाड़ियों में संजय जायसवाल दूध के धुले हुए हैं. ऐन चुनाव के वक्त हुए इस खेल से सब हैरान रह गए. लोजपा और कांग्रेस जब तक बात समझती, तब तक मामला हाथ से निकल गया. पीछे चल रहे भाजपा के जायसवाल मुक़ाबले में अचानक बेहतर स्थिति में आ गए. जनता के बीच जय-जयकार हुई, सो अलग. छापे में अपने ही प्रत्याशी को भी नहीं छोड़ने पर नीतीश सरकार ने भी खूब वाहवाही लूट ली.

वैसे इसमें कोई शक़ नहीं कि कांग्रेस से साधु यादव के चुनाव लड़ने से मुक़ाबला बड़ा ही रोचक हो गया. सिर्फ इस सीट पर ही नहीं, पूरे राज्य में कांग्रेस का जनाधार लौटने लगा है. ब्लॉक स्तर पर जहां कांग्रेस का कोई नाम लेने वाला नहीं होता था, वहां उसकी सभाओं में भीड़ जुटने लगी है. ऐसा फर्क पास की दूसरी सीट- शिवहर- में भी देखने को मिला. शिवहर से राजद ने सीताराम यादव को उतारा था. यहां भाजपा ने राज्य की पूर्व मंत्री रमा देवी को तो कांग्रेस ने लवली आनंद को चुनाव मैदान में उतारा. रमा देवी जहां बाहुबली नेता रहे ब्रजभूषण प्रसाद की विधवा हैं, वहीं लवली आनंद के पति आनंद मोहन हैं. यह क्षेत्र में कांग्रेस के लौटते जनाधार का ही प्रमाण है कि मतदान तक मुख्य मुक़ाबला लवली आनंद और रमा देवी के बीच ही पाया गया. लोगों का मानना है कि राजद यहां तीसरे नंबर पर ही आ सकती है.

फोटो- *पीटीआई*

भाजपा उम्मीदवार संजय जायसवाल पूरी मशक्कत के बाद भी मुक़ाबले में नहीं आ पा रहे थे. लिहाजा उनके लिए सरकारी तंत्र का इस्तेमाल किया गया. कुछ इस तरह कि सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे. और, वाकई वही हुआ जो नीतीश कुमार और उनके सलाहकार चाहते थे.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

चौथे चरण में तय होगी यूपी की चौधराहट

सुरेंद्र अग्निहोत्री

उत्तरप्रदेश में चौथे चरण में लोकसभा की 18 सीटों के लिए वोट पड़ेंगे. सात मई को राज्य में जहां वोट पड़ेंगे, वे हैं– कैराना, मुजफ्फ़रनगर, मेरठ, बागपत, मथुरा, गाजियाबाद, गौतमबुद्धनगर, अलीगढ़, बुलंदशहर, हाथरस, आगरा, फतेहपुर सीकरी, फिरोज़ाबाद, मैनपुरी, एटा, फर्रूखाबाद, इटावा व कन्नौज. इन चुनावी क्षेत्रों से समाजवादी पार्टी के सुप्रीमो मुलायम सिंह यादव, उनके पुत्र अखिलेश यादव, पूर्व मुख्यमंत्री कल्याण सिंह, फिल्म अभिनेता राज बब्बर, भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष राजनाथ सिंह, रालोद के राष्ट्रीय अध्यक्ष अजीत सिंह और उनके पुत्र जयंत चौधरी मुख्य प्रत्याशी हैं. चौथे चरण में कई सीटें ऐसी हैं, जहां सपा के बाग़ी ही पाला बदल कर मुलायम सिंह के उम्मीदवारों के लिए चुनौती बन गए हैं. जातिगत समीकरणों और परिसीमन से खुद मुलायम सिंह की राह इस बार कठिन हो गई है. इस कठिनाई को दूर करने के लिए कल्याण सिंह से हाथ मिलाकर मुलायम सिंह ने चरखा दांव चला है. उधर, पहलवानी के बाद राजनीतिक मंच पर दांव–पेंच के खेल में माहिर सपा सुप्रीमो के पुत्र अखिलेश सिंह यादव को घेरने के लिए मायावती ने उन्हीं की पार्टी से लाकर एसपी सिंह बघेल को फिरोजाबाद में और कन्नौज में डॉ. महेश वर्मा को मैदान में उतारा है. कांग्रेस के तीन निवर्तमान सांसदों मानवेंद्र सिंह (मथुरा), सुरेंद्र गोयल (गाजियाबाद), विजेंद्र सिंह (अलीगढ़) के भाग्य का फैसला होना है. रालोद के युवराज जयंत चौधरी पहली बार राजनीतिक अखाड़े में मथुरा से ताल ठोक रहे हैं. उनका मुक़ाबला खाटी जाट नेता कांग्रेस के निवर्तमान सांसद मानवेंद्र सिंह से है. कैराना में भाजपा के हुकुम सिंह कमल खिलाने की मुहिम में दिख रहे हैं. गाजियाबाद का चुनाव भाजपा के लिए कुरुक्षेत्र बन गया है. चारों तरफ से घिरे भाजपा अध्यक्ष राजनाथ सिंह को कांग्रेस और बसपा से त्रिकोणीय मुक़ाबला करना पड़ रहा है. बागपत में रालोद प्रमुख अजीत सिंह को घेरने के लिए कांग्रेस ने सोमपाल शास्त्री को जंग में उतारकर मुक़ाबला कड़ा कर दिया तो बसपा प्रत्याशी समीकरण को उलट रहा है. फतेहपुर सीकरी में कांग्रेस के राज बब्बर के ख़िलाफ़ सपा के रघुराज सिंह शाक्य, बसपा की सीमा उपाध्याय मैदान में हैं. मेरठ में बसपा के मलूक नागर की दमदार धमक से भाजपा कड़ा मुक़ाबला कर रही है तो कांग्रेस प्रत्याशी को यूडीएफ के समर्थन से नई ताकत मिली है. इसमें कोई दो राय नहीं कि इस बार मेरठ का चुनाव और दिलचस्प साबित होगा.

भाजपा नेता और *पीएम इन वेटिंग* लालकृष्ण आडवाणी उत्तरप्रदेश के मामले में फूंक–फूंक कर कदम रख रहे हैं. इसलिए कि 2004 के लोकसभा चुनाव ने उनका जायका बिगाड़ दिया था. तब केंद्र की कुर्सी उत्तरप्रदेश की वजह से नहीं मिलने का दर्द वह नहीं भूले हैं. भाजपा वालों का कहना है कि यूपी में पार्टी के रसातल में पहुंचने का कारण खोज लिया गया है. माना जा रहा है कि ग़लत पैरोकारी भाजपा के पतन का कारण बनी. बड़े नेताओं ने जिसे पसंद किया, उसे ही प्रत्याशी बनाया. जनता ने इसे नापंसद कर दिया. वर्ष 1998 के लोकसभा चुनाव में भाजपा को उत्तरप्रदेश में 36.49 फीसदी मत मिला था. यह प्रदेश में भाजपा का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन था. एक साल बाद ही पार्टी का जनाधार खिसक गया. वर्ष 1999 के चुनाव में 27.64 प्रतिशत वोट मिले. वर्ष 2002 के विधानसभा चुनाव में भाजपा और सिमट गई. उसे 25.31 फीसदी मत मिले. वर्ष 2004 के लोकसभा चुनाव में 22.17 प्रतिशत वोट मिले. जबकि वर्ष 2007 के विधानसभा चुनाव में यह घटकर 19.62 फीसदी पहुंचा गया. 2004 के लोकसभा चुनाव के परिणाम ने सारे सियासी समीकरण गड़बड़ा दिए थे. दिल्ली का तख्त करीब होते हुए भी दूर हो गया था.

उधर, उलेमाओं का फतवा मुलायम की मुस्लिम सियासत के ध्रुव रहे बाबरी मस्जिद आंदोलन की सियासी पैदावार मोहम्मद आज़म ख़ान का वह दांव है जो उन्होंने पर्दे के पीछे से कल्याण सिंह के मुद्दे पर सपा को सबक सिखाने के लिए खेला है. आज़म के इस दांव से कल्याण सिंह का साथ मुलायम सिंह को भारी पड़ता है या नहीं, इस का फैसला आना है.

दरअसल आज़म जता देना चाहते हैं कि मुलायम की मुस्लिम सियासत की चाबी उनके पास है, न कि सपा के हरफनमौला महासचिव अमर सिंह के पास, जैसा कि मुलायम समझ रहे हैं. आज़म जानते हैं कि अगर सपा को 30 से ज्यादा सीटें मिलीं तो उनका पार्टी में रहना मुमकिन नहीं होगा. अगर सपा 20 सीटों के आसपास सिमटी तो आज़म पार्टी में अमर विरोधी नेताओं की आवाज़ बनेंगे और कल्याण के मुद्दे पर उन्हें सवालों के घेरे में खड़ा करेंगे. इसीलिए चौथा चरण महत्वपूर्ण है.

समाजवादी पार्टी ने भाजपा से टूटे कल्याण सिंह को एटा लोकसभा क्षेत्र से बतौर निर्दलीय उम्मीदवार समर्थन दिया है. अपनी राष्ट्रीय छवि के अलावा कल्याण सिंह यादव, लोधी, ठाकुर, बघेल, वाल्मीकि और वैश्य मतदाताओं के सहारे अपनी दमदार उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं. उन्हें कुछ शाक्य और मुसलमान मतदाताओं का समर्थन भी मिलने की उम्मीद है, क्योंकि वह जगह–जगह भाजपा को दफन करने एलान कर रहे हैं. बहुजन समाज पार्टी ने एटा लोकसभा सीट से सपा के बागी सांसद देवेंद्र सिंह यादव को उम्मीदवार बनाया है. देवेंद्र सिंह यादव फिलहाल जाटव, मुस्लिम और ब्राह्मण मतदाताओं के भरोसे चुनाव मैदान में उतरे हैं. लेकिन सतीश मिश्रा की जनसभा में ब्राह्मणों की नगण्य उपस्थिति ने उनकी राह कठिन बना दी है. भारतीय जनता पार्टी के टिकट पर चुनाव लड़ रहे डॉ. श्याम सिंह शाक्य चिकित्सकीय पेशे से जुड़े हुए और साफ–सुथरी छवि के नए उम्मीदवार हैं. भाजपा से उम्मीदवार बनने से पहले वह एक वर्ष तक बसपा के घोषित प्रत्याशी रहे हैं.

गौतमबुद्ध नगर संसदीय क्षेत्र में कांग्रेस पिछले 25 साल से अपने सांसद की जीत के लिए प्रयासरत है. 1984 में खुर्जा संसदीय सीट (अब गौतमबुद्ध नगर) से कांग्रेस प्रत्याशी हापुड़ के वीरसेन पहली बार केंद्रीय मंत्रिमंडल में शामिल हुए थे. उन्हें पर्यावरण मंत्रालय सौंपा गया था. उन्होंने जनता पार्टी के त्रिलोक चंद को हराया था. पहले भी कांग्रेस के वीरसेन ने 13 साल बाद यह सीट कांग्रेस के खाते में डाली थी. 1971 में कांग्रेस के हरि सिंह की जीत के बाद वीरसेन ने कांग्रेस को जिताया था. इसके बाद से कभी भी कांग्रेस तीसरे पायदान से ऊपर नहीं उठी. उधर, परिसीमन बदला तो गाजियाबाद से चार बार सांसद रहे भाजपा के डॉ. रमेश चंद्र तोमर पार्टी से बागी होकर कांग्रेस में शामिल हो गए. कांग्रेस ने दरियादिली दिखाते हुए गौतमबुद्ध नगर सीट से डॉ. तोमर को प्रत्याशी घोषित भी कर दिया.

उधार के प्रत्याशियों के दम पर इटावा, एटा, कन्नौज, मुजफ्फरनगर, मथुरा, फिरोज़ाबाद, बुलंदशहर में चुनावी जंग जीतने के लिए आतुर बहुजन समाज पार्टी के लिए यहां खोने के लिए कुछ भी नहीं है. पाना ही पाना है. लेकिन सपा, कांग्रेस, भाजपा और रालोद के लिए अपना जनाधार बरकरार रखना सबसे बड़ी चुनौती है. समाजवादी पार्टी के टिकट पर विधायक बने गौरीशंकर ने सपा से नाता तोड़कर इटावा में बसपा प्रत्याशी बन गए हैं.

बहरहाल, इस क्षेत्र में ओबीसी वर्ग से आने वाले और अब साथी बने दो बड़े नेताओं कल्याण सिंह और मुलायम सिंह की सियासी ताक़त के लिए चौथे चरण का मतदान अग्निपरीक्षा से कम नहीं है. दोनों का मिलन क्या गुल खिलाता है, यह परिणामों से ही पता चलेगा. लेकिन इतना तय है कि मायावती ने भारतीय जनता पार्टी के फायरब्रांड नेता के रूप में उभरे वरुण गांधी को एटा जेल में भेजकर बृज क्षेत्र और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के माहौल को गर्म ज़रूर कर दिया. इस तपिश से निकले परिणाम किसके पक्ष में कितने होते हैं, यह 16 मई को ही पता चलेगा.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

गांव	मतदान
उत्तमनगर	0
मोरचिडा	0
अमलवाडी	0
मालापुर	0
गौथियापाड़ा	0
उमार्ती	0
खटियापाड़ा	0
वैजापुर	0
मूल्यौथार	0
शेनपानी	0
करजाना	2
मेलाने	23
देवगढ़	0
बोरमाली	0
कुंड्या पानी	0
चंड्या तलाव	0
पनसेवदी	0
पंधेरी	0
जियारत पाड़ा	0
उनापदेव	0
देवहारी	600
बोराजनाती	304
सत्रासेन	257
मोनापुरी	0
कुल	22800 में से सिर्फ़ 1191 वोट डले

हज़ारों ने नहीं डाला वोट

पावस नीर

वोट, प्रजातंत्र में जनता का सबसे बड़ा अधिकार है. वोट करने का मतलब केवल सरकार चुनने से नहीं है, यह जनता द्वारा अपनी आशाएं व्यक्त करने का सबसे सशक्त माध्यम भी है और इन आशाओं के पूरा न होने पर यही वोट उसका सबसे बड़ा हथियार भी है. हालांकि आज की राजनीतिक परिस्थिति में यह हथियार भी बेकार हो गया है. अब जनता क्या करे. क्या वोट के हथियार को बचाने का रास्ता वोट नहीं करने से निकलेगा.

महाराष्ट्र के जलगांव जिले के आदिवासियों ने यही रास्ता चुना है. जिले के 24 गांवों के करीब 23 हज़ार आदिवासियों ने इस बार चुनाव में वोट नहीं डाला. वोट नहीं डालने का यह फैसला चार अप्रैल को हुई आदिवासी पंचायत में लिया गया था. चुनाव के सामूहिक बहिष्कार का यह फैसला पूरी तरह सफल रहा और अधिकतर गांवों से ईवीएम मशीनों को बेकार लौट जाना पड़ा. इन 24 गांवों के 22 हज़ार 800 वोटरों में से बस 1191 ही वोट डालने पहुंचे.

दरअसल आदिवासियों का यह बहिष्कार उनके सीने में दबे दर्द का नतीज़ा था. जलगांव प्रशासन के दमन के ख़िलाफ़ गुस्से के इज़हार का तरीका था. जंगल और ज़मीन पर अपने हक़ का दावा ठोकने की कोशिश थी. आदिवासी इस बात की मांग कर रहे हैं कि सदियों से जिन जंगलों पर उनका हक़ रहा है, वहां से उन्हें दूर न किया जाए. ये आदिवासी सदियों से इन्हीं जंगलों की ज़मीनों पर गुजर–बसर करते रहे हैं. प्रशासन अब इन आदिवासियों से उनके इस प्राकृतिक अधिकार को छीनने की कोशिश में लगा है. ऐसे में बार–बार की कोशिशों के बाद भी जब उनकी सुनवाई नहीं की गई तो लोकतंत्र की इस व्यवस्था में उनका विश्वास हिलना लाज़िमी था. कई सरकारें आईं और गईं, पर इस सवाल का हल नहीं हुआ. इसी वजह से इस बार उन्होंने इस चुनाव का बहिष्कार करने की ठानी.

हालांकि राजनीतिक पार्टियों और प्रशासन ने इस बहिष्कार को तोड़ने की जी–तोड़ कोशिश की. हर तरह से आदिवासियों की एकता को तोड़ने का प्रयास किया गया, लेकिन आदिवासी एक साथ बने रहे.

आदिवासियों का कहना है कि प्रजातंत्र सच पर आधारित होना चाहिए. इसका आधार जनता की सेवा और संविधान का पालन है. लेकिन जब शासन इन बातों से अलग हो जाए तो ऐसे राज को प्रजातंत्र नहीं कह सकते. आदिवासियों में जो थोड़े बहुत लोग किसी राजनीतिक दल से जुड़े हुए थे, वे भी इन दलों को छोड़ कर इस आंदोलन का हिस्सा बनने के लिए आ गए हैं. उनका कहना है कि वे चुनावी प्रक्रिया में विश्वास तो करते हैं लेकिन लोकतांत्रिक तरीके से किया गया उनका हर विरोध नज़रअंदाज़ कर दिया गया. ऐसे में बहिष्कार ही आख़िरी उपाय बचा था. कोई भी राजनीतिक पार्टी उनके इस आंदोलन में साथ देने नहीं आई.

सवाल यह है कि चुनावों के बहिष्कार के बाद क्या इनकी सुनवाई होगी? क्या झूठे वादों से रूठ कर चुनाव को ठेंगा दिखाना आने वाली सरकार का ध्यान खींच पाएगा? लेकिन इन सबसे बड़ा सवाल यह है कि आख़िर क्यों विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के नागरिकों का भरोसा उसकी प्रक्रिया पर से उठता जा रहा है. ग्रेटर नोएडा के भी कई गांवों के किसानों ने इस बार चुनावों का बहिष्कार करने का फैसला किया है. वे भी अपनी ज़मीन पर सरकारी कब्ज़े का विरोध कर रहे हैं. चंद्रपुर और सांगली के ग्रामीणों और सोलापुर के कुष्ठ रोगियों ने भी बहिष्कार का झंडा बुलंद किया है. लेकिन ये संकेत अच्छे नहीं हैं. तो क्या हमारे लोकतंत्र का अस्तित्व ही खतरे में है? इस सवाल का जवाब हां में देना शायद जल्दबाज़ी होगी, लेकिन अगर लोकतंत्र के तथाकथित फरमाबदार ही अपने कर्तव्यों से दूर होने लगें, तो यह असंभव भी नहीं है.

भारतीय लोकतंत्र में जिस तरह से लोक और तंत्र के बीच की दूरी बढ़ती जा रही है, वह लोकतंत्र के लिए अशुभ संकेत है. एक गहरे आत्म–मंथन की ज़रूरत है, ताकि जलगांव के इन आदिवासियों की तरह बाकी जनता का भरोसा भी लोकतांत्रिक संस्थाओं न उठ जाए.

pawas.chauthiduniya@gmail.com

काले धन का सफ़ेद सच

लोकसभा में विपक्ष के नेता लालकृष्ण आडवाणी और माकपा पोलित ब्यूरो के सदस्य सीताराम येचुरी ने पूरा काला धन 1.5 खरब डॉलर के आसपास बताया है. यह आंकड़ा किसी को भी चौंका देने वाला है. यह पैसा भारत की कमाई है, चाहे वह वैध हो या अवैध. इसे देश से बाहर कर की चोरी के लिए तो भेजा ही गया है, साथ ही वैसे सवालों से भी बचा जा सकता है, जो इनकी कमाई के स्रोत से संबद्ध हैं.

विदेशों में जमा काला धन इस बार के चुनाव में अचानक प्रमुख मुद्दा बन कर उभरा है, तो इसके कारण भी हैं

प्रयाग अकबर

अनुमान के मुताबिक भारतीय नागरिकों ने काले धन के रूप में विदेशी बैंकों में 25 लाख करोड़ रुपए से लेकर 75 लाख करोड़ रुपए तक के छिपाए हुए हैं. ये विदेशी बैंक विनियमन-मुक्त टैक्स हैवेन के तौर पर जाने जाते हैं. स्विटजरलैंड भले ही बैंकिंग के स्वर्ग के तौर पर जाना जाता हो, लेकिन ये कर चोरों का पनाहगाह है. ऐसे पनाहगाह आइज़ल ऑफ मैन (इंग्लैंड के तटीय इलाके से दूर), लिखटेन्स्टाइन, मॉरीशस, ऑस्ट्रिया, द गेमैन द्वीप और वेस्ट इंडीज के कई इलाकों तक फैले हुए हैं, जिनका सबसे अहम आकर्षण है बैंक खातों की गुमनामी. दुनिया भर में 70 ऐसे करमुक्त-क्षेत्र हैं. ये अधिकतर ऐसे इलाकों में हैं जहां बैंकिंग विनियमन बहुत अधिक कड़े नहीं हैं, रकम के मूल स्रोत के बारे में सवाल नहीं पूछे जाते और सरकारी वित्तीय अधिकारी कमज़ोर, अकुशल या आसानी से रिश्वत स्वीकार लेने वाले होते हैं. यहां धन छिपाने के कारण भारत के भ्रष्ट राजनेता, नौकरशाह और व्यापारी कई अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं और वित्तीय निरीक्षकों के निशाने पर हैं. ये सभी अपनी अवैध कमाई सुरक्षित खातों में छुपाए हुए हैं, जहां खाताधारक की पहचान गुप्त रहती है.

लोकसभा में विपक्ष के नेता लालकृष्ण आडवाणी और माकपा पोलित ब्यूरो के सदस्य सीताराम येचुरी ने पूरा काला धन 1.5 खरब डॉलर के आसपास बताया है. यह आंकड़ा किसी को भी चौंका देने वाला है. यह पैसा भारत की कमाई है, चाहे वह वैध हो या अवैध. इसे देश से बाहर कर की चोरी के लिए तो भेजा ही गया है, साथ ही वैसे सवालों से भी बचा जा सकता है, जो इनकी कमाई के स्रोत से संबद्ध है. सत्ताधारी वर्ग के लिए इसका सीधा मतलब रिश्वत होता है.

वैसे, रिश्वतखोरी पर भारतीयों का एकाधिकार नहीं है. हां, यह बात भी तय है कि धीरे-धीरे अमेरिका और जर्मनी जैसे देशों नें कर चोरों के पनाहगार देशों पर दबाव बनाना शुरू कर दिया है ताकि वैसे नागरिकों का पता लगाया जा सके, जो टैक्स चोरी के दोषी हैं. अमेरिका ने एक नामचीन स्विस बैंक-यूबीएस-को इसके खाताधारकों के नाम बताने पर मज़बूर किया, हालांकि स्विस बैंक की इससे नाखुशी ज़ाहिर है. लिखटेन्स्टाइन पर जर्मनी के दबाव का भी नतीज़ा मिला. एक मात्र सरकार जो इस दिशा में कुछ भी नहीं कर रही, वह भी ज़ाहिर तौर पर भारतीय सरकार है. अचानक ही, जैसे कोई नींद से जागा हो, यह मसला 2009 के आम चुनाव में मतदाताओं को जागरूक करने वाला मसला भी बन गया है. विपक्षी दलों के राजनेता ज़ोर देकर कह रहे हैं कि केंद्र की सत्ता पर काबिज़ यूपीए गठबंधन जानबूझकर इस मामले में सुस्ती बरत रहा है. इससे शक़ पैदा होता है कि अगर खाताधारकों के नाम की सूची जारी कर दी गई, तो उसके कई बड़े नेता भी फंस सकते हैं. गुजरात के मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी ने हैदराबाद में एक चुनावी सभा के दौरान कहा कि पहली बार दुनिया के विकसित देशों ने जी-20 सम्मेलन में एक प्रस्ताव पारित किया कि वे उन देशों पर दबाव बनाकर और आर्थिक प्रतिबंध लगाएंगे, जो काले धन और गुप्त खातों को उजागर करने से हिचकते हैं. मोदी ने आगे यह भी कहा कि इस मसले पर हमारे प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह चुप रहे. कांग्रेस नेता कारनामों के उजागर होने के डर से नींद खो चुके हैं.

स्विटजरलैंड की भूमिका

नई दिल्ली में मार्च 2008 में हुए भारत-स्विस समझौते के समय वित्तीय बेबाकी का उल्लेखनीय प्रदर्शन करते हुए स्विस राजदूत डॉमिनिक ड्रेयर ने स्वीकार किया था कि उनके देश की बैंकिंग व्यवस्था में भारत से काफी काला धन आ रहा है. ग्लोबल फिनांशियल इंटीग्रिटी प्रोजेक्ट के आंकड़ों के अनुसार स्विटजरलैंड के बैंकों के पास दुनिया का एक तिहाई गैरक़ानूनी (काला) धन जमा है. इसी को ध्यान में रखते हुए आडवाणी ने मांग की कि यूपीए गठबंधन अपने उन मंत्रियों के नामों की सूची जारी करे, जिन्होंने पिछले दिनों बार-बार अनाधिकारिक रूप से स्विटजरलैंड का दौरा किया. आडवाणी का आरोप है कि ये वही नेता हैं जिनके अलग-अलग स्विस बैकों में खाते हैं और जो अपने पैसों की देखभाल करने वहां जाते हैं. हालांकि यह कोई ऐसा परिदृश्य नहीं जो केवल यूपीए सरकार तक ही सीमित रहा हो. स्विटजरलैंड की यात्रा पर राजनेता लंबे समय से जाते रहे हैं. इनमें सभी राजनीतिक दल एक जैसे ही हैं. हमने स्विटजरलैंड में नवंबर 2000 से जून 2002 तक भारत के राजदूत रहे निरंजन देसाई से बात की तो उन्होंने खुले तौर पर बताया कि इस त रह की यात्राओं को अमली जामा पहनाने में कितनी दिक्कत होती थी. देसाई बताते हैं कि जब इन नेताओं को स्विटजरलैंड में कोई काम भी नहीं होता था तब भी वह स्विटजरलैंड पहुंच जाते थे. ज़ाहिर तौर पर निजी काम या यात्रा से, लेकिन हमेशा सरकारी खर्चे पर उनको अगर कनाडा जैसी ज़गह पर किसी कांफ्रेंस में हिस्सा लेना होता था तब भी वे ज्यूरिख में रुक जाते थे. उसके बाद उनकी मांग होती थी कि भारतीय दूतावास उनका खर्चा वहन करे. वैसे निरंजन लगे हाथ यह दावा भी कर देते हैं कि उन्होंने कई बार ऐसा करने से मना कर दिया. खासकर जबतक उनको भारत सरकार की तरफ से आधिकारिक तौर पर नहीं भेजा गया हो. देसाई के मुताबिक औसतन नेतागण हरेक दो महीने में एक बार तो ज़रूर ही आते थे. किसी भी दूसरी ज़गह शक्तिशाली मंत्रियों और अधिकारियों की इस तरह की मेजबानी नहीं होती. देसाई बताते हैं कि उनकी शंका तब बढ़ गई जब उन्हें केंद्रीय सतर्कता आयोग (नई दिल्ली) से चिठ्ठी मिली. देसाई से आयोग के अध्यक्ष एनसी विट्ठल ने भी संपर्क किया, जो कि देसाई से एक रिपोर्ट के बारे में और ज्यादा जानकारी चाहते थे. यह रिपोर्ट स्विस रेडियो पर प्रसारित हुई थी, जिसमें कई नामी भारतीयों के बारे में बताया गया था. इनमें वे नाम थे जिनके खाते स्विस बैंक में हैं. रिपोर्ट में भारत के करीब 20 से 30 प्रभावशाली लोगों के नाम आए थे. हालांकि जब देसाई रेडियो स्टेशन के बड़े अधिकारियों से मिले तो उनको बताया गया कि अब वे रिकार्ड मौजूद नहीं हैं. इसलिए कि वे काफी पहले प्रसारित हुए थे. वैसे अधिकारियों ने रिपोर्ट की पुष्टि ही की, पर अधिक जानकारी नहीं दे सके. देसाई ने अपनी रिपोर्ट वापस भारत भेज दी और शायद वहीं मामला दब गया.

ग्लोबल फिनांशियल इंटीग्रिटी प्रोजेक्ट के आंकड़ों के अनुसार स्विटजरलैंड के बैंकों के पास दुनिया का एक तिहाई गैरक़ानूनी (काला) धन जमा है. इसी को ध्यान में रखते हुए आडवाणी ने मांग की कि यूपीए गठबंधन अपने उन मंत्रियों के नामों की सूची जारी करे, जिन्होंने पिछले दिनों बार-बार अनाधिकारिक रूप से स्विटजरलैंड का दौरा किया.

लिखटेन्स्टाइन-बोफोर्स और एलजीटी

कर चोरों के लिए लिखटेन्स्टाइन भी एक पनाहगाह है, जिसका इस्तेमाल भारतीय नेता अपनी नकदी (काले धन) को जमा करने में करते हैं. भारत में यह पहली बार तब कुख्यात हुआ, जब बोफोर्स मामला सामने आया. उसी समय यह खबर भी आई कि विन चड्ढा ने अपनी काली कमाई को ठिकाने लगाने में इसका इस्तेमाल किया. विन चड्ढा स्वीडन के शस्त्र निर्माता कंपनी-एबी बोफोर्स का एजेंट था. चड्ढा ने वहां एक संगठन बनाया था, ताकि वह उस देश में अपना खाता खोल सके, जिसका प्रशासन कोई वकील देखता था.

निरंजन देसाई ने लिखटेन्स्टाइन में भी राजदूत का पद संभाला था. देसाई बताते हैं कि वहां के विदेश मंत्री से इस मसले पर बातचीत के लिए उन्होंने समय लिया. उन्हें अचंभा हुआ कि विदेश मंत्री बेहद मददगार साबित हुए और उन्होंने उन्हें कई दस्तावेज दिए. उनके मुताबिक, उन दस्तावेज़ों को भारत में सीबीआई को भेजा जाना चाहिए था. मैंने उनको ये दस्तावेज़ भेज दिए. देसाई बताते हैं कि उनकी जानकारी में यह बात भी है कि कुछ और दस्तावेज़ भी सीबीआई के पास स्विटजरलैंड से भेजे गए थे, लेकिन सीबीआई ने कभी कुछ नहीं किया. देसाई के मुताबिक राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी ही इन जांचों को रोकती है.

बहरहाल, यह छोटा-सा मुल्क पश्चिमी देशों की तरफ से लगातार दबाव में है. जर्मन खुफिया विभाग ने अल-क़ायदा को मिल रही फंडिंग के मामले में इसके सबसे बड़े बैंकों में एक एलजीटी में जांच शुरू की. उन्होंने 2002 में बैंक के एक व्यक्ति को बैंक के 1400 सबसे बड़े खाताधारकों के नामों के बदले 60 लाख मार्क दिए. इनमें से 600 जर्मन थे. इसलिए जर्मन कर विभाग ने फरवरी 2008 से छापों और गिरफ्तारियों का सिलसिला शुरू किया. जर्मन सरकार 11 सितंबर की घटना के बाद धन की इस ग़ैरक़ानूनी जमाखोरी से इस कदर चिंतित थी कि उसने किसी भी देश की सरकार को बिना किसी शुल्क के इन खाताधारकों के बारे में जानकारी मुहैया करा दी थी. फिनलैंड, नॉर्वे, अमेरिका, आयरलैंड, इटली और ब्रिटेन ने इस मौके का फायदा उठाया. यह भी ग़ौरतलब है कि कथित तौर पर इस सूची में 100 भारतीयों के नाम थे, लेकिन भारतीय सरकार ने इसका अब तक न तो कोई फायदा उठाया और न ही इसकी कोई जानकारी ही ली. यह लापरवाही की इंतहा नहीं तो और क्या है.

चुनावी मुद्दा

2009 के लोकसभा चुनाव में इसे एक बड़ा मुद्दा बनाया गया है. मतदान के हरेक चरण के चुनाव प्रचार में इसे जोर-शोर से उछालकर हरेक पार्टी राजनीतिक लाभ उठाने के चक्कर में लग रही है. लालकृष्ण आडवाणी, नरेंद्र मोदी, सीताराम येचुरी से लेकर जेडीयू के अध्यक्ष शरद यादव तक ने बार-बार इस बात को उठाया. यूपीए गठबंधन में जो दल शामिल नहीं हैं, उनके लिए यह मसला अहम बन सकता है, क्योंकि राजनीतिक भ्रष्टाचार का मसला मतदाताओं के बीच लोकप्रिय हो सकता है. सभी पार्टी इस बात से वाक़िफ हैं कि भारत का स्थान भ्रष्टाचार के मामले में कितने ऊंचे स्थान पर आता है. ऐसे में चुनाव का समय तो इस मसले को उठाने का बिल्कुल राइट च्वाइस होगा ही. यह बात बिल्कुल अलग है कि इस हमाम में सभी नंगे हैं और किसी एक के भी बिल्कुल साफ होने की संभावना बेहद कम है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

हर दावेदार को है 16 तक सपने देखने का हक़

एम जे अकबर

कहा जा रहा है कि शरद पवार ने भावी प्रधानमंत्रियों के बीच होड़ शुरू करके कबूतरों के बीच एक बिल्ली छोड़ दी है. शायद उन्होंने इससे बुरा काम किया है. लगता है उन्होंने एक कबूतर को बिल्लियों के बीच छोड़ दिया है. राजनीतिक दल भूगोल, इतिहास, शख्सियत और विचारधारा (या विचारधारा की कमी) में भले अलग-अगल हों, पर एक बात से सब सहमत दिखते हैं कि मनमोहन सिंह का समय ख़त्म हो चुका है. एनडीए के नज़रिए को समझा जा सकता है-लालकृष्ण आडवाणी के रूप में उनके पास अपना उम्मीदवार है. सवाल तो यह है कि क्यों ऐसे राजनेता, जो मनमोहन सिंह के मंत्रिमंडल में पांच साल रहे हैं, सोचते हैं कि उन्हें ही अगले पांच साल के लिए प्रधानमंत्री होना चाहिए.

मार्क्सवादी मनमोहन सिंह को उतना ही नापसंद करते हैं जितना कि सिंह मार्क्स को. वाम के पास नई व्यवस्था की मांग का एक और कारण है, जिसे अधिक पहचाना नहीं गया है और समझा तो बिल्कुल नहीं गया है. कांग्रेस ने बंगाल और केरल में वाम विरोधी मोर्चा बनाने के लिए सहयोगियों की सारी मांगें मान ली हैं. हालांकि उसने बिहार, उत्तरप्रदेश, झारखंड जैसे राज्यों में अपने सहयोगियों के साथ ऐसा समझौता नहीं किया जबकि इससे भाजपा को बड़ा नुकसान होता. वाम को इसमें कांग्रेस का दोहरा खेल नज़र आता है.

करुणानिधि राष्ट्रीय स्तर की पहचान वाले एकमात्र नेता हैं जिन्होंने मनमोहन की गद्दी पर नज़रें नहीं गड़ाईं हैं. वजह शायद यह है कि उन्हें तमिलनाडु में आने वाले परिणामों का अंदाज़ा है. हालांकि कांग्रेस भी दोराहे पर है. आधिकारिक तौर पर तो मनमोहन ही वर्तमान और भविष्य के प्रधानमंत्री हैं, लेकिन विज्ञापनों में राजीव गांधी की जगह राहुल गांधी ने ले ली है.

सैद्धांतिक तौर पर इस नीलामी में बोली लगाने वालों को ग़लत नहीं ठहराया जा सकता. लोकतंत्र में केवल प्रधानमंत्री ही बराबर वालों में पहला होता है, ऐसे में प्रतिभा के दम पर राज करने के तर्क में दम है. लेकिन यूपीए में एक तरह की जाति व्यवस्था रही है. कांग्रेस ने अपने लिए ब्राह्मण के स्तर का प्रयोग कर के सरकार के सभी महत्वपूर्ण पदों और राजसत्ता के सभी साधनों को कब्ज़ा लिया. पवार, जिन्होंने 1991 में कांग्रेसी प्रधानमंत्री बनने का ज़ोरदार प्रयास भी किया था, को तुलनात्मक रूप से बंजर कृषि मंत्रालय में भेज दिया गया. 58 महीनों के मौन का मूल्य सवालों के दो महीने हैं.

महात्वाकांक्षा किसी एक पार्टी तक सीमित नहीं है. यह कोई रहस्य नहीं है कि सरकार के सबसे बड़े संकटमोचक रहे प्रणव मुखर्जी भी प्रधानमंत्री बनने से गुरेज नहीं करेंगे. अगर कांग्रेस की सीटें उसके विश्लेषकों के अनुमान से कम रहीं, तो सहयोगियों के द्वारा मुखर्जी का नाम ज़रूर लिया जाएगा, भले ही पार्टी उसे खारिज़ कर दे. यही वजह है कि वह शब्दों का खेल खेलते रहते हैं कि ममता बनर्जी से उनका गठजोड़ है या कि सीट-बंटवारा. गठजोड़ का अर्थ जहां शादी है, तो सीट बंटवारा महज चुहलबाज़ी. यूपीए के नए संस्करण की सबसे बड़ी समस्याओं में एक बात यह भी है कि वाम किसी ऐसी सरकार का हिस्सा नहीं बनेगा, जिसका हिस्सा ममता हों. ऐसी ही बात ममता के साथ भी है. यह सब बहुत सरल था जब ममता भाजपा की मित्र थीं. उनका धर्मनिरपेक्षता की ओर झुकाव काफी तक़लीफदेह साबित हो रहा है.

> **कांग्रेस ने बंगाल और केरल में वाम विरोधी मोर्चा बनाने के लिए सहयोगियों की सारी मांगें मान ली हैं. हालांकि उसने बिहार, उत्तरप्रदेश, झारखंड जैसे राज्यों में अपने सहयोगियों के साथ ऐसा समझौता नहीं किया जबकि इससे भाजपा को बड़ा नुकसान होता. वाम को इसमें कांग्रेस का दोहरा खेल नज़र आता है.**

महत्वाकांक्षा का रास्ता एक से अधिक सिद्धांतों से होकर गुज़रता है. इनमें सबसे सरल है संख्याबल की खरीद-फरोख्त की शक्ति का सिद्धांत. अगर आपको अपना दावा ठोकना हो तो सौदेबाज़ी के समय आपको सांसदों को लाना होगा. यह कहना कि शरद पवार की संख्या बस महाराष्ट्र तक सीमित है, शरद पवार को कम आंकना है. उन्हें कई पार्टियों का मौखिक समर्थन हासिल है. इनमें से कुछ सच्चे भी हो सकते हैं. नवीन पटनायक शरद पवार को प्रधानमंत्री के रूप में चाह सकते हैं, हालांकि यह बाद की बात होगी. अगर वह उड़ीसा विधानसभा में बहुमत नहीं ला सके, तब उन्हें यह सोचना होगा कि कांग्रेस और भाजपा में से कौन उन्हें मुख्यमंत्री के तौर पर देखना चाहेगा. इस सवाल के जवाब से ही उनका अगला कदम साफ होगा.

दूसरा सिद्धांत और व्यावहारिक है. इसे कमज़ोर का बचे रहना कहते हैं. सबसे कम प्रतिरोध का यह सिद्धांत एचडी देवगौड़ा और इंद्र कुमार गुजराल के समय गठबंधन के शुरुआती दौर में आजमाया जा चुका है. यह कछुए-खरगोश की पुरानी कहानी का ही रूपांतरण है, जिसमें सबसे पीछे रहने वाला ही आगे चलने वालों के हट जाने पर अकेला बचता है. इस परिदृश्य में, एक ताकतवर शख्सियत को दूसरे साझीदारों के लिए खतरा माना जाता है, जिससे नम्र-निर्विवाद शख्स ही आख़िरकार विजेता साबित होता है. हालांकि ऐसे कछुए कहानियों में ही होते हैं. हर दावेदार के पास 16 मई की सुबह आठ बजे तक सपने देखने का हक़ है. यही वह समय होगा जब कइयों की नींद खुलेगी.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

धर्मनिरपेक्षता-सर्व धर्म समभाव

रवि किशोर

हमारे संविधान की प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्ष शब्द को 42 वें संविधान संशोधन के बाद 1976 में जोड़ा गया था, लेकिन संविधान की धर्मनिरपेक्ष प्रवृत्ति को पहले से ही अनुच्छेद 25-30 में अभिव्यक्त कर दिया गया था. सुप्रीम कोर्ट ने इससे पहले 1972 में ही केशवानंद भारती मामले में ही साफ कर दिया था कि धर्मनिरपेक्षता संविधान के मूलभूत तत्वों में से है. केशवानंद भारती के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने व्यवस्था दी थी कि राज्य किसी भी नागरिक के साथ केवल धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं कर सकता है. इसी तरह 1975 में इंदिरा गांधी बनाम राजनारायण मामले में न्यायाधीश चंद्रचूड़ ने धर्मनिरपेक्षता के मूल तत्व को बताते हुए कहा था कि राज्य का अपना कोई भी धर्म नहीं होना चाहिए और हरेक नागरिक को उसकी इच्छा के मुताबिक धर्म को फैलाने, व्यवहार में लाने और बताने का अधिकार है. ध्यान देने वाली बात है कि सुप्रीम कोर्ट की यह व्यवस्था तब की है, जब संविधान की प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्ष शब्द नहीं था.

संविधान सभा में हुई बहस में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा पर सभी तरह से बहस हुई. इनका अध्ययन बताता है कि धर्मनिरपेक्षता के विचार और मसले पर सभा में सभी एकमत नहीं थे. बीआर अंबेडकर सहित कई सदस्य इस पक्ष में थे कि सार्वजनिक जीवन में धर्म का कोई दखल नहीं हो. जबकि केटी शाह इस मत के थे कि संविधान में एक अनुच्छेद हो जो सीधे तौर पर बताए कि भारतीय गणराज्य का किसी भी धर्म, संप्रदाय या विश्वास से कोई लेना-देना नहीं है. दूसरी तरफ हिंदू पुरातनपंथी जैसे केएन मुंशी चाहते थे कि इस बात को ध्यान में रखा जाए कि भारत के लोगों में धार्मिक विश्वास बहुत गहरे हैं, और जिन्होंने हिंदू तरीके से सहिष्णुता की व्याख्या की है. आख़िरकार सर्व धर्म समभाव का सिद्धांत ही सबकी

सहमति पा सका और अब तो यह संविधान का अंग है.

सुप्रीम कोर्ट ने धर्मनिरपेक्षता के विचार को कई बार परिभाषित किया है. अहमदाबाद सेंट जेवियर्स कॉलेज सोसायटी बनाम गुजरात राज्य मामले में न्यायाधीश मैथ्यू और चंद्रचूड़ ने महसूस किया कि यह केवल कार्यप्रणाली का मामला है कि संविधान ने धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा दी. साथ ही न्यायाधीशों ने यह भी व्यवस्था दी कि संविधान ने राज्य और धर्म के बीच एक साफ दीवार नहीं खड़ी की है. यह तो केवल गुणात्मक आधार पर कहा जा सकता है कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है. वैसे, एसआर बोम्मई बनाम भारतीय गणराज्य के ऐतिहासिक फैसले में सुप्रीम कोर्ट की नौ सदस्यीय खंडपीठ ने यह व्यवस्था दी कि धार्मिक सहिष्णुता और सभी धार्मिक संप्रदायों के जीवन, संपत्ति और उनके पूजास्थलों की सुरक्षा भी धर्मनिरपेक्षता के अनिवार्य अंग हैं. सुप्रीम कोर्ट ने आगे यह भी कहा कि भारत के नागरिक अपनी इच्छा के मुताबिक कोई भी धर्म अपनाने और उसे व्यवहार में लाने के लिए स्वतंत्र हैं और राज्य का उनके धर्म से कोई लेना-देना नहीं है. राज्य के लिए सभी बराबर हैं और हरेक नागरिक के साथ एक जैसा व्यवहार ही होना चाहिए. कोर्ट ने आगे यह भी व्यवस्था दी कि धर्म का अतिक्रमण धर्मनिरपेक्ष गतिविधियों में कतई नहीं होना चाहिए. जस्टिस रामास्वामी ने अलग राय देते हुए कहा कि राज्य के पास धर्मनिरपेक्षता को बनाए रखने का जरिया केवल क़ानून या कार्यकारी शक्तियां ही हैं. उन्होंने कहा कि धर्म पर आधारित कार्यक्रमों या नीतियों वाले दलों की संविधान ने साफ मनाही की है. रामास्वामी के मुताबिक यह न्यायालय का कर्तव्य है कि हरेक अतिवादी राजनीतिक दल को रास्ते पर लाए, अगर वह पार्टी धर्मनिरपेक्ष ताने-बाने को ठेस पहुंचाती है और जातिवाद या सांप्रदायिकता को बढ़ावा देती है. रामास्वामी के विचार इसी बात को पुष्ट करते हैं कि धर्मनिरपेक्षता में जातिवाद-विरोध भी आता है और यह न्यायालय के कठोर फ़ैसले को ही दिखाता है.

> **संविधान सभा में हुई बहस में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा पर सभी तरह से बहस हुई. इनका अध्ययन बताता है कि धर्मनिरपे-क्षता के विचार और मसले पर सभा में सभी एकमत नहीं थे. बीआर अंबेडकर सहित कई सदस्य इस पक्ष में थे कि सार्वजनिक जीवन में धर्म का कोई दखल नहीं हो.**

हालांकि, एक भ्रम की स्थिति तीन मामलों में बनी, जिन्हें हिंदुत्व के निर्णय के नाम से जाना जाता है. इनमें सबसे अहम रमेश यशवंत प्रभू बनाम श्री प्रभाकर काशीनाथ कुंटे का मामला है, जबकि दो अन्य मनोहर जोशी बनाम नितिन भाउराव पटेल और प्रोफेसर रामचंद्र जी कापसे बनाम हरिबंस रामकबल सिंह थे.

सुप्रीम कोर्ट ने हिंदुत्व को भारतीयता से जोड़ दिया और कहा कि हिंदुत्व को संकीर्ण बनाकर देखने की ज़रूरत नहीं है और न ही इसे हिंदू धार्मिक क्रियाकलापों से ही जोड़कर देखने की आवश्यकता है जो भारत के लोगों की संस्कृति और विचारों से असंबद्ध हो. इसे तो भारतीय लोगों की जीवनपद्धति से जोड़कर देखना चाहिए.

11 दिसंबर 1995 को सुप्रीम कोर्ट की तीन सदस्यीय खंडपीठ ने कई अपीलों पर व्यवस्था दी, जो बांबे हाई कोर्ट के उस फैसले के बाद दायर की गई जिसमें कुछ शिवसेना और भाजपा उम्मीदवारों के महाराष्ट्र विधानसभा में जाने से संबंधित थीं. बांबे हाई कोर्ट ने तीन उम्मीदवारों के चुनाव को रद्द कर दिया था. इसका आधार यह था कि जनप्रतिनिधित्व क़ानून-1951 के सेक्शन 123 (3) के आधार पर वे भ्रष्ट आचरण में लिप्त थे. इसकी व्याख्या यह थी कि किसी प्रत्याशी या उसके एजेंट के द्वारा किसी को धार्मिक आधार पर वोट करने के लिए उकसाना या रोकना भी भ्रष्ट आचरण है.

यशवंत प्रभू के मामले में सुप्रीम कोर्ट की खंडपीठ ने चुनाव में हिंदुत्व के इस्तेमाल पर व्याख्या दी. कोर्ट ने कहा कि हिंदुत्व केवल एक धार्मिक विश्वास नहीं है, बल्कि यह तो भारतीय लोगों की संस्कृति है. इससे कोई मतलब नहीं कि कोई भारतीय हिंदू है या मुसलमान, सिख, ईसाई या यहूदी है. सुप्रीम कोर्ट ने यह भी व्यवस्था दी कि केवल भाषण में इसका उल्लेख करने से उम्मीदवार की पात्रता रद्द नहीं की जा सकती. यह भी हो सकता है कि इन शब्दों का इस्तेमाल धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा देने के लिए किया जा रहा हो या फिर किसी राजनीतिक दल को असहिष्णु या भेदभाव बढ़ाने वाला बताने के तौर पर किया जा रहा हो. इसीलिए उम्मीदवार की अपात्रता के लिए मामले की पूरी जांच ज़रूरी है. इसी तरह अनुच्छेद 25(2) राज्य के धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप की मोटी रूपरेखा बताता है. यह अनुच्छेद उन सभी अधिकारों पर बाध्यताएं लादता है, जो अनुच्छेद 25(1) के तहत दिए गए हैं और भारतीय समाज की खास ज़रूरतों पर प्रकाश डालता है. हालांकि कई के अनुसार अब भी एक सही धर्मनिरपेक्ष राज्य बनने में कुछ कमियां मौजूद हैं, जैसे अलग धर्मों के लिए अलग पर्सनल लॉ, राज्य का धार्मिक संस्थानों में दखल और आरक्षण का बढ़ता हुआ दायरा. वैसे, ऐसा इसलिए है कि भारतीय समाज की अपनी विशेषताएं हैं और ये सभी धार्मिक समुदायों की भावना के अनुरूप और सर्वधर्म समभाव को मज़बूत करने वाला है.

(लेखक सर्वोच्च न्यायालय में वकील हैं)

feedback.chauthiduniya@gmail.com

माननीय संपादक महोदय,

लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप में और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार को सार्थक कर राष्ट्रोत्थान हेतु आपके लोकप्रिय समाचार पत्र चौथी दुनिया ने अविस्मरणीय भूमिका का निर्वहन किया है. रचनात्मक पत्रकारिता के माध्यम से आपने समूचे राष्ट्र में विकास को नए आयाम देने के प्रयत्न किए हैं, जो अतुलनीय है. समाज के नागरिकों को जागरूक करने हेतु प्रेरणादायी पहल की है. विश्व स्तर पर इस पहल को सफलता मिलेगी. ऐसी ईश्वर से कामना है.

भय्यूदादा
उदयसिंहजी
महाराज, इन्दौर

आदरणीय संपादक महोदय,

पिछले अंक में आपका लेख **'तोप मुकाबिल हो'** पढ़ कर बहुत अच्छा लगा. मेरे मन में भी पाकिस्तान को लेकर कई तरह की धारणाएं बनी हुई थीं. मुझे लगता था कि पाकिस्तान में आतंकवादी माहौल हरवक्त बना रहता होगा, लेकिन आपका लेख पढ़ कर मेरी आशंकाएं दूर हुईं, जो पहले दिमाग में घूमती रहती थीं. आपने अपने लेख के माध्यम से वहां के खान-पान, रहन-सहन, शिक्षा, संस्कृति और सामाजिक परिस्थितियों को उजागर किया. इससे जो आम आदमी में पाकिस्तान को लेकर भ्रम है, वह दूर होगा. इस लेख से एक प्रेरणा मिली कि लाहौर के लोग अपने को लाहौरिये कहलाने में गर्व महसूस करते हैं, उसी तरह हम भारतीय कहलाने में. अलग-अलग देश में रहने के बावजूद लगता है एक ही देश की परंपरा है. उम्मीद करता हूं कि आगे इस तरह की नई चीज़ें अख़बार के माध्यम से पाठकों को उपलब्ध कराते रहेंगे.

अमर सिंह
पांडव नगर

चौथी दुनिया
हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

हम चाहते हैं कि आप अपने क्षेत्र के जागरूक संवाददाता बनें. आप अपने आसपास घट रही घटनाओं, जिनका संबंध, महिलाओं, बच्चों, किसानों, दलितों, अल्पसंख्यकों की समस्याओं उनके संघर्ष, उनपर होने वाले अत्याचार से हो, या आप अपने आसपास राजनीति, पुलिस और बाहुबलियों से जुड़ी घटनाओं पर रिपोर्ट भेजना चाहें, तो हम उनका स्वागत करेंगे. संपादकीय विभाग द्वारा चुनी गई प्रथम रिपोर्ट को तीन हजार रुपए का पुरस्कार दिया जाएगा. कृपया रिपोर्ट अपनी तस्वीर के साथ भेजें. अगर आप रिपोर्ट मेल करना चाहें, तो रिपोर्ट story.chauthiduniya@gmail.com *पर भेज सकते हैं.*

जब तोप मुकाबिल हो

भारतीय राजनीति के कई पहलुओं को उसके सबसे नंगे रूप में देखने के लिए तैयार हो जाइए. 22 मई तो बाद में आएगी, जब सचमुच सरकार बनेगी और प्रधानमंत्री के नाम पर फैसला होगा लेकिन उसके पहले के घात-प्रतिघात और उससे उपजी कटुता के परिणाम भारतीय राजनीति पर क्या असर डालेंगे, इसे देखना दिलचस्प होगा. ऐसा लगता है कि भारतीय राजनीति में अनुशासन हीनता का महापर्व चल रहा है जिसमें सभी बढ़-चढ़ कर हिस्सा ले रहे हैं. पूरी राजनीति परस्पर अविश्वास के आधार पर चल रही है. एक राजनैतिक दल है, एक विचारधारा है, एक साथ काम करने वाले लोग हैं लेकिन किसी का दूसरे में विश्वास नहीं है, जब मिलते हैं तो होठों पर मुस्कुराहट होती है लेकिन मन में शंका. जैसे ही मिल कर दूर जाते हैं, पता लगाने की कोशिश शुरू हो जाती है कि दूसरा आख़िर करने क्या जा रहा है और यह भी कि उसे रोका कैसे जा सकता है.

भारतीय जनता पार्टी में अटल बिहारी वाजपेयी का दौर खत्म हो चुका है और पता नहीं था कि इतनी जल्दी अटल बिहारी वाजपेयी अप्रासंगिक हो जाएंगे. उनकी अपील, उनकी फिल्म, उनका टेप, मतदाताओं के नाम उनका संदेश, यहां तक कि उनकी तस्वीर भी इन लोकसभा चुनावों से गायब है. राजनीति में इतना नाशुक्रापन पहले कभी देखने को नहीं मिला.

जब भाजपा ने तय किया कि श्री आडवाणी को प्रधानमंत्री बनाना है तब क्यों चुनाव के बीच में अरुण शौरी ने अगले प्रधानमंत्री के रूप में नरेंद्र मोदी का नाम उछाल दिया, और क्यों जल्दी-जल्दी में अरुण जेटली ने उसका समर्थन कर दिया. दरअसल दोनों ने अनुशासनहीनता का महान उदाहरण प्रस्तुत कर दिया और पार्टी में संदेश दिया है कि अगर सहयोगियों ने कुछ भी सवाल खड़ा किया तो मोदी को प्रधानमंत्री बनाने में दोनों जी जान लगा देंगे. इन दोनों अरुण महानों ने सफलतापूर्वक आडवाणी के निर्विवाद नाम पर सवालिया निशान लगा दिया. सरसंघचालक मोहन भागवत की चुप्पी भी इशारा कर रही है कि वे इस विवाद को हटा देना चाहते हैं. सबसे खतरनाक नरेंद्र मोदी की मुद्रा है जो टी.वी. पर दिखाई जा रही है. वे प्रधानमंत्री बनाए जाने के सवाल का सवाल का उत्तर तो आडवाणी के नाम से देते हैं. दो दिन बाद वह जिस तरह से मुस्कुराते हैं वह कह जाता है कि वे सिर्फ कहने के लिए आडवाणी का नाम ले रहे हैं.

तो क्या भाजपा के भीतर प्रधानमंत्री के नाम को लेकर कोई विवाद पैदा हो सकता है. और उस स्थिति में कौन-कौन नाम सामने आ सकते हैं. अगर संघ के सूत्रों पर विश्वास करें तो मुरली मनोहर जोशी और जसवंत सिंह का नाम ऐसा है जो विवाद की स्थिति में सर्वानुमति वाले नामों में शामिल हो सकता है. ऐसी स्थिति क्यों भाजपा के दो नेताओं ने पैदा कर दी कि आडवाणी के नाम के साथ ही दूसरे नामों पर भी भाजपा व संघ में बातचीत शुरू हो गई. इसे कहते हैं अनुशासनहीनता की गुगली.

> **भारतीय जनता पार्टी में अटल बिहारी वाजपेयी का दौर खत्म हो चुका है और पता नहीं था कि इतनी जल्दी अटल बिहारी वाजपेयी अप्रासंगिक हो जाएंगे. उनकी अपील, उनकी फिल्म, उनका टेप, मतदाताओं के नाम उनका संदेश, यहां तक कि उनकी तस्वीर भी इन लोकसभा चुनावों से गायब है. राजनीति में इतना नाशुक्रापन पहले कभी देखने को नहीं मिला.**

कांग्रेस के भीतर प्रधानमंत्री पद को लेकर कोई विवाद नहीं है क्योंकि सोनिया गांधी मनमोहन के नाम की खुद ही घोषणा कर चुकी हैं. लेकिन 27 अप्रैल को प्रणव मुखर्जी के चुनाव क्षेत्र में जब मंच से सोनिया गांधी ने पूछा कि हमारा प्रधानमंत्री कौन होगा तो भीड़ ने चिल्ला कर कहा कि राहुल गांधी, और सोनिया का ममता से भरा लेकिन शरमाया चेहरा बोला कि अभी तो हमारे पास एक प्रधानमंत्री है. इसका मतलब यह हुआ कि अगर मनमोहन सिंह स्वास्थ्य के कारणों से मना कर देते हैं या कांग्रेस का समर्थन करने वाले दल वीटो लगा देते हैं तो फिर कौन प्रधानमंत्री होगा. कांग्रेस के साथ पांच साल सरकार चला चुके, शरद पवार, शरद यादव व राम विलास पासवान खुलेआम कह चुके हैं कि प्रधानमंत्री वही बनेगा, जिसे वह चाहेंगे. प्रकाश कारत तो खुलकर कह चुके हैं कि कांग्रेस का प्रधान मंत्री होगा ही नहीं, बाहर का होगा, यानी या तो वह, या फिर मायावती.

अगर कांग्रेस के पुराने सहयोगियों को यूपीए मानें तो इस समय चुनाव में सभी एक दूसरे को, यानी कांग्रेस को लालू, राम विलास व महाराष्ट्र में शरद पवार छुपे तौर पर हराने की कोशिश कर रहे हैं. उड़ीसा में शरद पवार खुले आम कांग्रेस का विरोध कर रहे हैं. पूरा यूपीए असंगठित और एक दूसरे के खिलाफ गर्दन काटने के लिए तैयार खड़ा है. वामपंथी कांग्रेस को और कांग्रेस वामपंथियों को बर्बाद करने में लगी है. देखना है कि दो हफ्तों बाद जब सरकार बनाने की कवायद शुरू होगी तो आज होने वाली विचारधारा की लड़ाई कैसे अपना मुखौटा बदल, सरकार बनाने की विचारधारा में तब्दील हो जाएगी. पंडित जवाहर लाल नेहरू के दोनों नातियों के परिवारों में जुबानी सिर फुटौव्वल इन चुनावों में शुरू हो चुकी है और आपको अगले दो हफ्तों तक नए-नए जुमले सुनने को मिलेंगे. प्रियंका गांधी, राहुल गांधी और वरुण गांधी में समझौता था कि दोनों पक्ष एक-दूसरे के यहां न प्रचार करने जाएंगे और न बयान देंगे. पिछले चुनाव में भाजपा ने काफी कोशिश की थी कि वरुण राहुल के चुनाव क्षेत्रों में उनके खिलाफ आवाज देने जाएं, लेकिन वरुण ने मना कर दिया था. इन चुनावों में वरुण के बयान पर प्रियंका की टिप्पणी कि लोग सबक सिखाएंगे, वरुण को खल गई और उन्होंने भी कह दिया कि मैं दादा-दादी के नाम पर राजनीति नहीं करता, अपने दम पर करता हूं. आशा करती चाहिए कि वरुण और प्रियंका, राहुल की अंत्याक्षरी अभी चलेगी.

डर है कि दोनों पक्ष एक दूसरे के चुनाव क्षेत्र में ललकारने न चले जाएं. इंदिरा गांधी के परिवार के बीच का झगड़ा अपने नंगे रूप में जनता के सामने आने वाला है अगर दोनों परिवारों ने समझदारी न दिखाई तो एनडीए में नीतीश कुमार ने पूरा नियंत्रण स्थापित कर लिया है तथा जार्ज फर्नांडिस व दिग्विजय सिंह को दल से बाहर जाने और निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़ने को विवश कर दिया है.

आडवाणी, राजनाथ सिंह व अरुण जेटली भी दोनों की कोई मदद नहीं कर पाए. अब नीतीश कुमार ने साफ कर दिया है कि यदि भाजपा को उनके सहयोग से सरकार बनानी है तो उसे धारा 370, राममंदिर बनाने व यूनिफार्म सिविल कोड की मांग छोड़नी होगी. भाजपा इस धमकी का जवाब देने की स्थिति में नहीं है. उधर कांग्रेस भी नीतीश कुमार के संपर्क में हैं. भाकपा महासचिव ए बी बर्धन ने कहा है कि उन्हें नीतीश कुमार से कोई परहेज नहीं है. ए बी बर्धन के बयान में भाजपा को चौकन्ना कर दिया है, वहीं नीतीश कुमार अपने बयानों व अपने चुनाव-प्रचार में काफी सावधानी बरत रहे हैं.

ये स्थितियां ऐसी हैं जो सीधी व साफ नहीं हैं. और न विचारधारा पर आधारित हैं. लंदन के लॉर्ड मेघनाद देसाई वकालत कर रहे हैं कि अगली सरकार कांग्रेस व भाजपा को मिल कर बनानी चाहिए. दोनों को विचारधारा अलग रख आर्थिक और विकास के कामों का एजेंडा बनाना चाहिए और लागू करना चाहिए. क्या यह हो सकता है. अगर यह होता है तो वैचारिक अनुशासनहीनता के इतिहास का सबसे बड़ा उदाहरण होगा. कहते हैं कि हिंदुस्तानियों पर ईश्वर या अल्लाह बहुत मेहरबान है. इसलिए यहां कुछ भी हो सकता है. आप भी 22 मई की प्रतीक्षा कीजिए और किसी भी तरह की अनहोनी को देखने के लिए तैयार हो जाइए.

संपादक

feedback.chauthiduniya@gmail.com

दलितों के पैर छूते ब्राह्मण
सामाजिक बदलाव की ओर एक कदम

मनीष कुमार

इस तस्वीर को अगर गांधी और अंबेडकर भी देखते तो उन्हें अपनी आंखों पर यकीन नहीं होता. उन्होंने भी यह नहीं सोचा होगा कि पूरी दुनिया के सामने किसी दलित महिला के पैर छूने के लिए ब्राह्मण हाथ जोड़कर लाइन में खड़े होंगे. और आशीर्वाद देना तो दूर, वह आराम से सोफे पर बैठकर मंद-मंद मुस्कुरा रही होगी. यह पता करने की कोशिश कर रही होगी कि पैरों पर गिरने वाला ब्राह्मण किस चीज की भीख मांगने आया है. गांधी और अंबेडकर जीवन भर दलितों के अधिकारों की बहाली और छुआछूत के ख़िलाफ़ लड़ते रहे लेकिन मायावती की इस तस्वीर को देख कर यह कहना पड़ेगा कि प्रजातंत्र ने हिंदू समाज के ढांचे को ही उसके सिर के बल खड़ा कर दिया है और कांशीराम के सपने को सच होने जैसा बना दिया है.

भारत में सदियों से दलितों पर जुल्म होता रहा. सत्ता हमेशा ऊंची जाति के हाथ की कठपुतली रही और पिछड़ी जाति और दलितों को इससे दूर रखा गया. जिन लोगों को समाज के बाहर समझा जाता था, जिन पर घरों, मंदिरों और पवित्र स्थलों में घुसने की पाबंदी थी, जिनकी परछाई से भी ऊंची जाति को लोगों को घृणा थी, जिन्हें प्रदूषित समझा जाता था, वे अब सिर्फ वोट देना नहीं चाहते हैं बल्कि सत्ता में बराबर के हिस्सेदार बनकर देश चलाना चाहते हैं. ऐसा सिर्फ प्रजातंत्र में ही हो सकता है कि जिन्हें सदियों तक सत्ता से दूर रखा गया, आज वही सत्ता पर काबिज़ हों. यह प्रजातंत्र का ही कमाल है कि सदियों का फ़ासला सिर्फ पचास साल में दूर हो जाए. वह भी बिना किसी हिंसा और दमन के.

भारत में जातिगत राजनीति आज़ादी के पहले से मौजूद है. प्रजातंत्र की वजह से उन लोगों को भी वोट देने का मौका मिला जिन्हें अब तक सत्ता से दूर रखा गया था. पिछले 60 सालों में समाज और राजनीति में बदलाव आया है. यह परिवर्तन अचानक नहीं, शांतिपूर्ण और आहिस्ता-आहिस्ता हुआ. यही वजह है कि लोगों को इस बात को स्वीकार करने में परेशानी होती है कि सामाजिक वास्तविकता बदल चुकी है.

आरएसएस का समर्थन करने वाले एक फ्रांसीसी नागरिक हैं-फ्रैंकिएर गोशिए. फ्रांस से हिंदू धर्म की पढ़ाई करने आए और खुद हिंदू बन गए. वह इस बात को लेकर चिंतित हैं कि ब्राह्मणों की हालत बहुत ख़राब है. वह कहते हैं कि ब्राह्मण अब शौचालय साफ करने का काम कर रहे हैं. उन्होंने दिल्ली में सुलभ शौचालय की तहक़ीकात की तो पता चला कि हरेक सुलभ शौचालय की देखभाल करने वालों में पांच से छह ब्राह्मण हैं. यह बात और है कि सुलभ इंटरनेशनल संस्था भी एक ब्राह्मण ने शुरू की थी. वह यह भी बताते हैं दिल्ली के पटेलनगर में पचास फीसदी रिक्शा चालक ब्राह्मण हैं.

फोटो-पीटीआई

आज़ादी के तुरंत बाद जातीय चेतना का पतन होने लगा था. शहरों में, पढ़े-लिखे नौजवानों के बीच जाति का महत्व कमजोर पड़ने लगा. ऐसा लगने लगा कि हिंदू समाज में जातिगत ढांचे ख़त्म होने वाला है. शहरों में लोग एक साथ खाने लगे, छुआछूत ख़त्म हो गया, अंतरजातीय शादी भी होने लगी. आजादी के साठ साल बाद यह कहा जा सकता है कि शहरी समाज में जाति की जड़ें कमजोर हुईं, लेकिन राजनीति के क्षेत्र में जाति की पकड़ मजबूत हुई है. 70 के दशक में आपातकाल के बाद इसमें काफी बदलाव आया. जातिगत राजनीति का न सिर्फ दायरा बढ़ा, बल्कि जाति राजनीति का केंद्रबिंदु बन गई. राजनीतिक दल खुलेआम जातियों के आधार पर बंट गए, चुनाव में जातीय समीकरण की बात खुलेआम स्वीकार करने लगे. बराबरी और सामाजिक न्याय के नाम पर जातिगत समीकरण तय करना ही परम कर्तव्य बन गया. जैसे-जैसे राजनीति पर जाति का प्रभाव बढ़ा, वैसे- वैसे राजनीति का मिजाज़ भी बदल गया. यह बात भी सही है कि राजनीति ने समाज को नहीं बांटा, बल्कि राजनीतिक दलों ने समाज में मौजूद विभाजन का चुनाव जीतने के लिए इस्तेमाल किया है. पिछले 30 सालों में भारतीय राजनीति की ख़ासियत यही रही है कि जाति का इस्तेमाल सत्ता हासिल करने के लिए ही हुआ. किसी भी दल का एजेंडा सामाजिक विकास रहा ही नहीं. जातियों को संगठित करके और उनके वोट खींचकर किसी तरह चुनाव जीतना ही राजनीतिक दलों की पहचान बन गई.

आज़ादी के बाद केंद्र में कांग्रेस का दबदबा रहा. हैरानी की बात यह है कि किसी भी दल ने उत्तर भारत में एक भी दलित नेता को राष्ट्रीय स्तर पर उभरने नहीं दिया. इन दलों ने समाज में मौजूद जाति व्यवस्था का इस्तेमाल कर दलितों को एक वोट बैंक की तरह ही इस्तेमाल किया. राजनीति में दलितों को हमेशा हाशिए पर रखा गया. उत्तर भारत में बाबू जगजीवन राम जैसे दलित नेता राष्ट्रीय स्तर पर उभरे, लेकिन ऊंची जाति के नेताओं के सामने टिक नहीं सके. दक्षिण भारत और महाराष्ट्र में संघर्ष के जरिए जाति व्यवस्था के सबसे निचले तबके ने अपना वर्चस्व कायम किया. उत्तर भारत में इमर्जेंसी के बाद पिछड़ी जातियों और दलितों में राजनीतिक चेतना जगी. सत्ता पर ऊंची जातियों के एकाधिकार को चुनौती दी गई. जब ये संगठित हुए तो सत्ता के दरवाजे सबके लिए खुल गए. यह बदलाव किसी क्रांति से कम नहीं है. यह इस बदलाव का ही नतीजा है कि प्रजातंत्र की जड़ें भारत में मजबूत हुई हैं. दुनिया भर में प्रजातांत्रिक विकास का ऐसा उदाहरण नहीं है.

कांशीराम के बताए रास्ते पर चल कर उत्तरप्रदेश की मुख्यमंत्री मायावती ने खुद की एक अलग पहचान बनाई है. दलितों को लगता है कि सिर्फ मायावती ही ऊंची जातियों के सिर पर चढ़ कर राज कर सकती हैं. उन्हें लगता है कि मायावती ही दलितों के हर उत्पीड़न का जवाब हैं. दलितों के बीच मायावती की इमेज राबिनहुड की है. कांशीराम और मायावती ने अपना राजनीतिक आधार खड़ा किया और दलितों को एक मजबूत शक्ति के रूप में तैयार किया है. एक मध्यवर्गीय दलित लड़की ने दिल्ली के एक कॉलेज की अध्यक्ष से लेकर देश के सबसे बड़े राज्य की मुख्यमंत्री तक का सफर तय किया है. मायावती की यही ताक़त समाज के उन लोगों को आश्रय लेने के लिए मजबूर किया, जिन्हें पिछड़ी जातियों ने सत्ता से बाहर कर दिया. लोकसभा चुनाव के बाद अगर मायावती प्रधानमंत्री बनती हैं तो यही कहना पड़ेगा कि दुनिया के सबसे पुराने लोकतंत्र अमेरिका को जो कमाल करने में सवा दो सौ साल लग गए उसे भारत ने सिर्फ साठ साल में कर दिखाया.

भारतीय राजनीति में निचली जातियों का प्रभाव सत्तर के दशक से दिखना शुरू हुआ. राजनीति में हिस्सा लेने वाले समाज का दायरा बढ़ा, दलितों और पिछड़ी जातियों की हिस्सेदारी बढ़ी. जाति का राजनीतिकरण हुआ. दलितों और पिछड़ी जातियों के प्रतिनिधियों की संसद और विधानसभा में संख्या बढ़ने लगी. हिंदुस्तान में आज़ादी के तीस साल बाद प्रजातंत्र ने सही रूप में अपने पैर जमाने शुरू कर दिए. यही वजह है कि उत्तर भारत में मायावती, रामविलास पासवान, मुलायमसिंह यादव, नीतीश कुमार और लालू यादव जैसे नेता राष्ट्रीय स्तर पर उभर कर आए. आज़ादी के बाद सत्ता का सुख विशिष्ट वर्ग के पास सीमित था. उत्तरप्रदेश की स्थिति दूसरे राज्यों से भिन्न है. समीकरण ऊंची जाति के पक्ष में है, इसलिए उत्तरप्रदेश में ऊंची जातियों का दबदबा बरकरार है. लेकिन भारतीय जनता पार्टी और कांग्रेस के कमजोर होने से उत्तर प्रदेश की ऊंची जातियां के पास कोई चारा नहीं बचा है. शोषण के लिए जरूरी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को बचाने और सत्ता के नजदीक बने रहने के लिए इनलोगों ने मायावती से नजदीकियां बढ़ाईं. यह पूछना भी लाज़िमी है कि क्या प्रजातंत्र और विकास का मतलब दलितों और पिछड़ी जातियों के सत्ता पर होना है ? नहीं. अफसोस की बात यह है कि दलित और पिछड़ी जातियों की पार्टी के पास आर्थिक और सामाजिक एजेंडे को लागू करने की ताक़त नहीं है. सरकारी नीतियों और योजनाओं का फायदा ग़रीब दलित और ग़रीब पिछड़ी जातियों को नहीं होता. हां, इतना जरूर होता है कि आरक्षण के तहत सीटों को भर दिया जाता है. ये अच्छे संकेत हैं, लेकिन महज खानापूरी हैं. सवाल यह है कि किस सरकार ने ग़रीबों, दलितों और पिछड़ों के सशक्तीकरण के लिए अलग से कोई योजना बनाई? दलितों और देश के ग़रीबों के लिए अलग से शिक्षा और रोजगार के लिए सरकारी खजाने के दरवाजे क्यों नहीं खुलते? वजह साफ है कि दलितों और पिछड़ी जातियों के हाथ में सत्ता में होने के बावजूद समाज में शोषण तंत्र कायम है. यह तंत्र ख़त्म नहीं हुआ है. नब्बे के दशक के बाद से बाज़ार जिस तरह हावी है, अगर दलित व पिछड़ी जातियां इस बाज़ार आधारित अर्थव्यवस्था से बाहर रहीं तो इनके विकास पर पूर्णविराम लग जाएगा.

manish.chauthiduniya@gmail.com

दांव पर आंकड़े

व्यालोक

पंद्रहवें आम चुनाव के तीन चरणों का मतदान निपट चुका है. देश के करोड़ों लोग अपनी राय ईवीएम में बंद करा चुके हैं. आइए, बीच चुनाव में एक बार फिर से चुनाव सर्वेक्षणों की बात कर लें. ये सर्वेक्षण पहले दौर के चुनाव से पहले के हैं. इसलिए कि चुनाव आयोग ने बीच चुनाव में ओपिनियन पोल, एक्ज़िट पोल और सर्वे के नाम पर अन्य तमाम तरह के सर्वेक्षणों पर रोक लगा रखी है. फिर भी, इन्हीं अनुमानों के आधार पर सरकार के बनने-बिगड़ने का खेल चल रहा है. कौन सा नेता कहां जा रहा है, किसकी ताक़त कितनी होगी, कौन अगली सरकार में सबसे बड़ी भूमिका निभाएगा, ये सब इन्हीं सर्वेक्षणों के आधार पर तय हो रहा है. ग़ौरतलब है कि चुनाव शुरू होने से ऐन पहले ऐसा कोई चैनल या अख़बार नहीं था जिसने चुनावी सर्वेक्षणों की बहती गंगा में हाथ नहीं धोया हो. सभी सर्वेक्षणों का नतीज़ा भी कमोबेश एक जैसा ही है. सवाल यह है कि आख़िर कुछ हज़ार लोगों की राय पर आधारित इन सर्वेक्षणों पर कितना यकीन किया जाए.

ये सर्वेक्षण विचारों के प्रतिशत के सिद्धांत पर कार्य करते हैं. इनका दावा है कि ये देश के हर कोने में जाकर अलग-अलग तरह के लोगों की राय पर आधारित हैं. इसी सैंपल को आधार मानकर नतीज़ों का अनुमान लगाया गया. साफ है कि ये सर्वेक्षण जनता की सीधी राय से अधिक कंप्यूटर जनित आंकड़ों को दिखाते हैं. एक्ज़िट पोल का यह सिद्धांत पश्चिम के देशों में अधिकतर सफल रहा है. कई देशों में तो यह तकनीक इतनी कारगर रहती है कि सर्वेक्षणों में आगे रहने वाला अपनी जीत के प्रति आश्वस्त हो जाता है. इसी तकनीक के आधार पर भारत में भी मतदान के ट्रेंड को समझने की कोशिश हो रही है. हालांकि बार-बार फेल हो रहे सर्वेक्षणों ने यह दिखा दिया है कि भारत में यह तरीका कारगर नहीं हो रहा. इसके कई कारण हैं. सबसे बड़ा कारण तो यह है कि भारत पश्चिम नहीं है. इस देश का सामाजिक और सांस्कृतिक ताना-बाना इतना जटिल है कि यहां के नागरिकों की पसंद के बारे में कुछ भी सामान्यीकृत तौर पर कहना ग़लत होगा. दूसरे, इस देश की विशालता और जनसंख्या को देखते हुए कोई भी महज चंद लोगों के बयान पर पूरे देश की राय नहीं बता सकता. भारत के हर कोने में जो राजनीतिक मुद्दे हैं, एक-दूसरे से बिलकुल अलग-अलग हैं. चूंकि कोई एक राष्ट्रीय मुद्दा नहीं है, ऐसे में मतदान भी एक-सा नहीं हो सकता. किसी राज्य में स्थानीय मुद्दे हावी होते हैं, तो कहीं कुछ और. भारत के मतदाता को वैसे भी बेवकूफ समझना बेवकूफी ही होगी. वह बेहद चतुर सुजान है. काफी सतर्क और जागरूक है. कब वह किसको राजगद्दी सौंप दे और कब किसी को बेदख़ल कर दे, यह कोई नहीं जानता. इसीलिए किसी सार्थक सर्वेक्षण के लिए बहुत ज़रूरी है कि सभी प्रस्तुत मुद्दों को ध्यान में रखकर ही कोई राय कायम की जाए. हमारे ज्ञानीजन इस बात का ध्यान ही नहीं रखते.

ग़ौरतलब है कि चुनाव शुरू होने से ऐन पहले ऐसा कोई चैनल या अख़बार नहीं था जिसने चुनावी सर्वेक्षणों की बहती गंगा में हाथ नहीं धोया हो. सभी सर्वेक्षणों का नतीज़ा भी कमोबेश एक जैसा ही है.

अब आइए, एक नज़र डालते हैं पिछले आम चुनाव के समय हमारे विद्वान सर्वेक्षणकारों द्वारा दिए गए फतवे पर. उस बार के चुनाव के पहले भी भाई लोगों ने अपने ही ढंग से सरकार बना दी थी. 2004 में सर्वेक्षणों के नतीज़े कुछ इस तरह थे.

पिछला आम चुनाव (2004)

चैनल	एनडीए	यूपीए	अन्य
एनडीटीवी	287-307	190-205	50-60
सहारा समय	263-278	171-181	90-102
स्टार न्यूज़	263-275	174-186	86-98
आज तक	189	106	
ज़ी न्यूज	249	176	118

और, अब देखिए कि असल मामला क्या हुआ? किस तरह हमारे धुरंधरों को मुंह की खानी पड़ी. भाई लोगों ने तो एनडीए की सरकार दोबारा बनवा ही दी थी, लेकिन भारतीय मतदाताओं ने सारे नतीज़ों को ग़लत करार देते हुए एनडीए को 185 सीटों पर ही समेट दिया.

अंतिम परिणाम 2004

कुल सीटें	कांग्रेस और सहयोगी (यूपीए)	भाजपा और सहयोगी(एनडीए)
543	275	185

सर्वेक्षण-2009

अब इस साल के सर्वेक्षणों पर एक नज़र डाल लीजिए. जैसी परंपरा चली आ रही है, पूरी उम्मीद है कि इस बार भी हमारे गणितज्ञ मुंह की खाएंगे.

स्रोत	यूपीए	एनडीए	अन्य	चौथा मोर्चा
सीएनएन-आईबीएन	215-235	165-185	120-150	
स्टार न्यूज-1	257	185	96	
टाइम्स ऑफ इंडिया	201	195	82	65
इंडिया टीवी	178	187	121	57
स्टार न्यूज 2	203	191	104	39
एनडीटीवी	202-215	160-170	120-130	30-35
इंडिया टुडे	196-205	176-182	169-178	
द वीक	234	186	112	
औसत	200-210	180-185	120-125	45-50

Vyalok.chauthiduniya@gmail.com

तमिलनाडु में श्रीलंका का लोचा

देश की अगली सरकार बनाने में निश्चय ही तमिलनाडु एक अहम भूमिका निभाएगा, लेकिन तमिलनाडु की राजनीति में इस वक़्त सबसे अहम क्या है? यहां की राजनीति में इस समय न तो स्थानीय मुद्दे उभार पर हैं, न ही राष्ट्रीय मसलों का ज्वार. तमिलनाडु में अगर इस वक़्त कोई विषय महत्वपूर्ण है भी, तो उसका कलेवर अंतरराष्ट्रीय है. श्रीलंका में सेना और लिट्टे के बीच अंतिम और निर्णायक संघर्ष ही तमिलनाडु का चुनावी मुद्दा है. श्रीलंकाई सेना ने लिट्टे की कमर तोड़ दी है और उसका मुखिया प्रभाकरण अपनी जान बचाने के लिए दो गज ज़मीन तलाश रहा है. इस संघर्ष में एक लाख तमिल नागरिक बेघर हो गए हैं, युद्ध ने उन्हें अपनी ज़मीन, अपना घर और वतन छोड़ने पर मज़बूर कर दिया है. इससे श्रीलंका में तो स्थिति भयावह हो ही गई है, लेकिन भारत में भी शरणार्थियों का आना ज़ारी है. यह तो ख़ैर एक मानवीय और नागरिक समस्या हुई, लेकिन तमिलों के इस संकट को ही पासा बनाकर तमिलनाडु का हरेक राजनीतिक दल सियासत की बिसात पर अपनी चाल चल रहा है.

तमिलनाडु में 1991 के आम चुनाव से ही श्रीलंका के तमिलों का मसला एक प्रमुख मुद्दा बनता रहा है. राजीव गांधी की श्रीपेरुंबुदुर में 21 मई 1991 को चुनावी सभा में हुई हत्या के बाद से ही लिट्टे और श्रीलंका का संघर्ष यहां के दलों का चुनावी मसला रहा है. हालांकि, श्रीलंका में राजीव गांधी द्वारा भारतीय शांति सेना भेजने के फ़ैसले से भी यहां की राजनीति में काफी तूफान मचा था. उसके बाद से हरेक आम चुनाव में यह मसला उछलता रहा और राज्य की राजनीति को गरमाता रहा. राजीव की हत्या की जांच के लिए बने जैन कमीशन ने तो केंद्र में इंद्रकुमार गुजराल की सरकार ही गिरा दी थी. दरअसल, जैन आयोग ने अपनी रिपोर्ट में राजीव की हत्या के मसले पर द्रमुक की तरफ भी इशारा किया था. गुजराल उस रिपोर्ट को दबाकर बैठ गए, क्योंकि उनकी सरकार में द्रमुक भी साझीदार थी. कांग्रेस ने जैन आयोग की रिपोर्ट को सार्वजनिक करने के लिए गुजराल सरकार पर दबाव बनाया और इसी को मुद्दा बनाकर उनकी सरकार गिरा दी.

फोटो-पीटीआई

अब इसे विधि की विडंबना कहिए या राजनीति की मज़बूरी कि 2004 में यूपीए की सरकार में भी द्रमुक साझीदार बनी और कांग्रेस ने अपने पहले के फैसले को ग़लती बताते हुए अपना पल्ला झाड़ लिया. हालांकि, बिल्कुल ही उल्टा स्टैंड लेने वाली कांग्रेस अकेली पार्टी नहीं है. लिट्टे का लगातार विरोध करने वाली और उसे प्रतिबंधित करने की मांग तक करने वाली अम्मा यानी जयललिता भी अचानक ही समरसॉल्ट कर तमिल हितों की पैरोकार बन गई हैं. दोष इसमें उनका क्या है? पहले तो अम्मा को कांग्रेस का साथ चाहिए था, इसलिए लिट्टे का विरोध करना ही था, लेकिन अब तो खुद कांग्रेस ही उसी नाव पर सवार है. फिर तमिलों का वोट भी तो चाहिए. इसलिए अम्मा भी अब वही कह रही हैं, जो बाकी ईलम समर्थक दल कह रहे हैं. सबसे हैरतनाक पालाबदल तो सीपीआई की राज्य इकाई ने किया है. राज्य में ताजा विरोध प्रदर्शनों की शुरुआत उसी ने की, हालांकि पार्टी के घोषणापत्र में उसके पुराने स्टैंड का ही उल्लेख है, जिसके अनुसार सीपीआई संयुक्त और संघीय श्रीलंका के ही पक्ष में है. इधर द्रमुक ने तो पिछले दिनों हड़ताल ही कर डाली. सबसे मुश्किल हालत में कांग्रेस फंस गई है. उससे न उगलते बन रहा है, न ही निगलते. द्रमुक के साथ मिलकर वह राज्य में चुनाव लड़ रही है, साथ ही केंद्र में भी द्रमुक साझीदार है. द्रमुक ने मुद्दा भी तमिल नागरिकों की सुरक्षा और उनके हितों को बनाया है, न कि ईलम की मांग को केंद्र में रखा है. कांग्रेस ने अपने राजनीतिक हितों को साधने के लिए पलटवार किया और विदेश सचिव मेनन और सुरक्षा सलाहकार नारायणन को श्रीलंका भेज कर भारत का संदेश देने को कहा. इससे सांप भी मर गया और लाठी भी नहीं टूटी. अब बाकी राजनीतिक दल इस बात को मसला नहीं बना पाएंगे कि तमिल नागरिकों के लिए कुछ नहीं किया गया. हालांकि जयललिता ने मसले को तूल देने में कोई कसर नहीं छोड़ी. अब उनका इतिहास तो सबको पता है, इसलिए खुल कर वह तो इस मसले पर कुछ कह नहीं सकती थीं, इसी वजह से उन्होंने कॉमरेड प्रकाश करात का सहारा लिया. प्रकाश करात ने सरकार के इस कदम को नाकाफी बताते हुए कांग्रेस पर हल्ला बोल दिया. उनका कहना था कि सरकार ने जो कुछ भी किया है, हम उससे कहीं अधिक की उम्मीद रखते थे.

बहरहाल, सियासत की शतरंज पर मोहरों की तेजी से अदला-बदली हो रही है. फैसला राज्य की जनता चाहे कुछ भी करे, पर इतना तो तय है कि जब तमिलनाडु के मतदाता 13 मई को नेताओं की किस्मत ईवीएम में कैद करेंगे, तो श्रीलंका कहीं-न-कहीं उनके दिमाग़ में दस्तक दे रहा होगा.

तमिलनाडु में 1991 के आम चुनाव से ही श्रीलंका के तमिलों का मसला एक प्रमुख मुद्दा बनता रहा है. राजीव गांधी की श्रीपेरुंबुदुर में 21 मई 1991 को चुनावी सभा में हुई हत्या के बाद से ही लिट्टे और श्रीलंका का संघर्ष यहां के दलों का चुनावी मसला रहा है.

अखिलेश पाठक

feedback.chauthiduniya@gmail.com

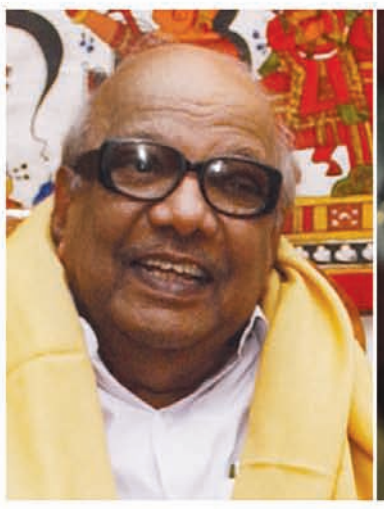

असली बिहारी बाबू बनने की जंग

शॉटगन बनाम सिक्स पैक. यानी शत्रुघ्न सिन्हा बनाम शेखर सुमन. जाति एक, पेशा एक और अब सांसद बनने की ज़ोर आज़माइश. बिहारी बाबुओं का घमासान. एक–दूसरे को पटखनी देने की हर मुमकिन कोशिश. पटना साहिब की सीट पर बेहद दिलचस्प मुक़ाबला. इस सीट के लिए सात मई को वोट डाले जाएंगे. तब तक यहां की चुनावी फिज़ा बेहद रंगीन बनी रहेगी. 40 डिग्री सेल्सियस के आसपास तापमान. झुलसा देने वाली गर्म हवा. धूप का क़हर, पर मुक़ाबला बेहद दिलचस्प. यूं तो इस निहायत मनोरंजक सियासी लड़ाई का आगाज़ प्रत्याशियों के नामों की घोषणा के साथ ही हो चुका था. पर असल मज़ा शुरू हुआ प्रत्याशियों के नामांकन के वक़्त से. जब शेखर सुमन रिक्शे पर बैठ नामांकन करने पहुंचे. तमाशबीनों की भीड़ तो इकठ्ठा हो ही गई, तरह–तरह के कयासों ने भी सियासी बाज़ार में हलचल मचानी शुरू कर दी.

एयरकंडीशंड ज़िंदगी जीने के आदी ये सितारे लू के थपेड़ों के बीच गली–गली ख़ाक़ छान रहे हैं. पटना सिटी की कचौरी गली में रहने वाले हितेश गुप्ता के लिए तो यह मंज़र सपनों सरीखा है. हितेश और उनके साथियों को इस बात से कोई मतलब नहीं कि शत्रुघ्न या शेखर में से कौन जीतेगा या कौन हारेगा. वह तो बस अपने सामने दो–दो सितारों को देख कर ही खुश हैं. शेखर आते हैं तो मजमा लगता है और जब शत्रुघ्न आते हैं तब भी महफ़िल जमती है. जिन सितारों को लोग–बाग सिनेमा के पर्दे पर हरफनमौला नायक के रूप में देखा करते थे, टीवी पर अदाकारी के जलवे बिखेरते देखा करते थे आज वे हाथ जोड़े, दीन भाव से मुस्कुराते चक्कर लगा रहे हैं. यह बात न सिर्फ लोगों में कौतुहल जगा रही है, बल्कि उन्हें कुछ ख़ास होने का अहसास भी करा रही है.

इस कशमकश में आम आदमी उलझा हुआ है. वह यह तय नहीं कर पा रहा कि किसे वोट दे. उस पर दोनों प्रत्याशियों के अपने–अपने दावे. शत्रुघ्न सिन्हा फरमाते हैं कि उन्हें इसलिए विजयी बनाया जाए, क्योंकि वह पटना के लिए बहुत कुछ करने की इच्छा रखते हैं. हालांकि यह बात भी दीगर है कि स्वास्थ्य मंत्री और जहाजरानी मंत्री रहते हुए शत्रुघ्न सिन्हा ने पटना की सेहत सुधारने की गरज़ से कुछ ख़ास नहीं किया. इस क्षेत्र में कायस्थ मतदाताओं की संख्या काफी अधिक है. दोनों ही प्रत्याशी जातीय राजनीति के इस गणित को खूब ठोक–बजा कर इस्तेमाल कर रहे हैं. अपने–अपने तरीकों से जात–बिरादरी को लुभाने की कवायद.

उधर, पटना सिटी इलाके में मुस्लिम मतदाताओं की तादाद काफी है. उन पर दाना डालने की भरपूर जुगत में दोनों हैं. पेशे से प्राध्यापक और पटना सिटी के सुल्तानगंज़ मोहल्ले के रहने वाले खुर्शीद अहमद कहते हैं कि इस मसले पर पलड़ा कांग्रेस यानी शेखर का ज़्यादा भारी है. पटना सिटी के मुसलमान कांग्रेस के पक्ष में गोलबंद दिख रहे हैं. शेखर भी इस बात की नज़ाक़त खूब समझ रहे हैं. इसलिए वह हर मस्ज़िद, इमामबाड़ा और मदरसे की ख़ाक छान चुके हैं. उधर शत्रुघ्न सिन्हा भी इस दौड़ में आगे निकलने की हर–संभव कोशिश में हैं. वह भाजपा के नाम पर नहीं, बल्कि नीतीश कुमार के नाम पर वोट मांग रहे हैं. भाजपा के राष्ट्रीय मीडिया प्रभारी संजय मयूख कहते हैं कि नीतीश सरकार ने प्रदेश में हर तबके के लिए बेहतरीन काम किया है. और जनता इसका सिला ज़रूर देगी. बिहारी बाबू के चुनाव प्रचार में भाजपा के राज्यस्तरीय नेताओं की भरमार होती है. वे सभी मिलकर चुनाव प्रचार की व्यवस्था सुचारू तरीके से चलाने में अपना योगदान देते हैं.

शत्रुघ्न सिन्हा की पत्नी पूनम सिन्हा भी घर–घर घूमकर महिलाओं से अपने सुहाग को विजयी बनाने की अपील कर रही हैं. पर शेखर सुमन के साथ हालात थोड़े उलटे हैं. उनके साथ कांग्रेस की ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है. उनको अपने यूथ ब्रिगेड पर ही भरोसा करना पड़ रहा है. शेखर सुमन के पैतृक घर लोहानीपुर मोहल्ले में रहने वाले समाजसेवी अखिलेश्वर दयाल बताते हैं कि प्रदेश कांग्रेस के ज़्यादातर नेताओं को यह भी नहीं पता कि शेखर सुमन का कार्यालय कहां है. बावज़ूद इसके, शेखर को अपनी लोकप्रियता का लाभ मिल रहा है. वह एक मंझे हुए राजनेता का अभिनय बखूबी कर रहे हैं. हाथ जोड़े बड़े क़ायदे से हर छोटे–बड़े का अभिवादन करना, उनका हाल–चाल पूछना और किसी भी ज़रूरत के वक़्त मदद का भरोसा देना, शेखर यह सब कुछ कर रहे हैं. साथ ही यह वादा भी कि पटना सिटी की जनता उन्हें एक बार मौका देकर तो देखे, वह पटना की सूरत बदल देंगे. शत्रुघ्न सिन्हा के पास भी शेखर के इस जवाब की काट है. वह पटना की झुग्गी–झोपड़ियों में जाते हैं. ग़रीबों का हालचाल पूछते हैं. उनकी फटेहाली पर तरस खाते हैं और फिर केंद्र सरकार पर गरजते हैं. कहते है कि केंद्र सरकार की नीतियां ग़रीब विरोधी हैं. उसने ग़रीबों की तरक्की के सारे रास्ते बंद कर दिए हैं. अगर ग़रीबों ने शेखर सुमन को वोट दिया तो ग़रीब जी नहीं पाएंगे. जाहिर है, ये बयानबाज़ियां शत्रुघ्न सिन्हा और शेखर सुमन के चुनावी शगूफे हैं.

असल में जो बात ग़ौर करने की है वह पटना के गांधी संग्रहालय के निदेशक रज़ी अहमद फरमाते हैं. कहते हैं कि शत्रुघ्न सिन्हा और शेखर सुमन इस मुग़ालते में हैं कि वे अपनी अदाकारी से जनता को भरमा लेंगे. पर हक़ीकत में ऐसा होगा नहीं. पटना सिटी के मुसलमान जानते हैं कि उनका भला किसमें है. और वे उन्हीं को वोट देंगे जो उनके हितों की, सम्मान की रक्षा के दायित्व का निर्वाह करेगा.

यह बात भी दीगर है कि स्वास्थ्य मंत्री और जहाजरानी मंत्री रहते हुए शत्रुघ्न सिन्हा ने पटना की सेहत सुधारने की गरज़ से कुछ ख़ास नहीं किया. इस क्षेत्र में कायस्थ मतदाताओं की संख्या काफी अधिक है. दोनों ही प्रत्याशी जातीय राजनीति के इस गणित को खूब ठोक–बजा कर इस्तेमाल कर रहे हैं.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

छत्तीसगढ़ में छत्तीस का आंकड़ा

पिछले विधानसभा चुनाव की तरह ही इस बार लोकसभा चुनाव में भी छत्तीसगढ़ में कोई ख़ास मुद्दा नहीं था. चुनाव होने हैं इसलिए हुए. पहले भी हुए थे, इस बार भी हुए. छत्तीसगढ़ के प्रथम वित्त मंत्री और पूर्व राजा रामचंद्र सिंहदेव कहते हैं पिछले विधानसभा चुनाव में दोनों पार्टियों के उम्मीदवारों ने दो–दो करोड़ रुपए खर्च किए और इस बार के लोकसभा चुनाव में तो पैसा और शराब पानी की तरह बहा. अब बताइए, प्रदेश के कितने प्रतिशत लोग इतना ख़र्च कर सकते हैं? यहां चुनाव उतने ही लोगों के लिए है, और उनकी ही रुचि है इन चुनावों में.

पिछले विधानसभा चुनाव के बारे में लोग कहते हैं कि उस चुनाव में भाजपा नहीं जीती बल्कि कांग्रेस हारी. उस चुनावी मैच में कांग्रेस का अपने ही पाले में गोल था. कांग्रेसी नेता इस गणित में ही व्यस्त थे कि कहीं कांग्रेस में उनके विरोधी खेमे वाला न जीत जाए. इसी चक्कर में उनकी पार्टी ही हार गई. कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी को भी बाद में यह कहना पड़ा कि छत्तीसगढ़ में कांग्रेस गुटबाजी के कारण हारी.

विरोधी दल के एक नेता के मुताबिक, कांग्रेस के एक बड़े नेता ने उनसे पिछले चुनाव से पहले फोन पर यह कहा था कि यदि उन्हें धन की आवश्यकता हो तो उनसे संपर्क करने में न हिचकिचाएं. उधर, उस बड़े कांग्रेसी नेता के विरोधी खेमे ने बताया कि फोन पर हुई इस बातचीत को टैप कर लिया गया था और उसे पार्टी अध्यक्ष सोनिया गांधी के पास भेज दिया गया.

पिछले विधानसभा चुनाव के बारे में लोग कहते हैं कि उस चुनाव में भाजपा नहीं जीती, बल्कि कांग्रेस हारी. उस चुनावी मैच में कांग्रेस का अपने ही पाले में गोल था. कांग्रेसी नेता इस गणित में ही व्यस्त थे कि कहीं कांग्रेस में उनके विरोधी खेमे वाला न जीत जाए.

विधानसभा चुनाव में कांग्रेस को भाजपा से सिर्फ 1.4 फीसदी ही कम वोट मिले और विश्लेषकों का कहना है कि यदि कांग्रेस ने किसानों की आत्महत्या जैसे जनता से जुड़े मुद्दों को चुनाव में उठाया होता तो भाजपा के तीन रुपए किलो चावल जैसे मुद्दों का मुक़ाबला किया जा सकता था और हो सकता है वे 1.5 फीसदी वोट भी मिल जाते जिससे हार को जीत में बदला जा सकता था.

अगर आप छत्तीसगढ में हुए पिछले तमाम चुनाव परिणामों पर नज़र डालें तो यहां हमेशा हार या जीत का अंतर दोनों प्रमुख पार्टियों के बीच दो से तीन फीसदी ही रहता है.

कांग्रेस के किसान सेल के नेता दाऊलाल चंद्राकर कहते हैं कि उन लोगों की ओर से किसान आत्महत्या की जांच को घोषणापत्र में शामिल कराने की पूरी कोशिश की गई, पर बड़े नेताओं की अनदेखी के कारण ऐसा नहीं हो पाया.

देश में सभी को मालूम है कि पिछले दस सालों से चार प्रदेशों महाराष्ट्र (विदर्भ), आंध्रप्रदेश, केरल और कर्नाटक में काफी किसान आत्महत्याएं हो रही हैं, पर यह अधिक लोगों को मालूम नहीं है कि देश में औसतन प्रति व्यक्ति किसान आत्महत्या की दर में छत्तीसगढ़ सबसे आगे है. और ऐसा एक दो साल नहीं, बल्कि जबसे छत्तीसगढ़ राज्य बना तब से ही वह इस सूची में सबसे ऊपर है. किसान आत्महत्या के लिए सर्वाधिक बदनाम विदर्भ (महाराष्ट्र) में प्रति एक लाख जनसंख्या में 4.49 किसान प्रतिवर्ष आत्महत्या करते हैं, पर छत्तीसगढ़ के लिए यही आंकड़ा 6.49 का है. इसके बावजूद छत्तीसगढ़ के कांग्रेसी नेता अपने विरोधी कांग्रेसी नेताओं की ही टांग खींचने में इतने व्यस्त हैं कि उन्हें ये सरकारी आंकड़े भी नज़र नहीं आते.

प्रदेश के मुख्यमंत्री रमन सिंह ने विधानसभा में यह बयान दिया कि छत्तीसगढ़ में आज तक एक भी किसान ने कर्ज़ के कारण आत्महत्या नहीं की है. उधर, पुलिस विभाग के आंकड़ों में ऐसे दर्ज़नों किसानों के नाम और पते भरे हैं जिन्होंने अत्यधिक कर्ज़ से परेशान होकर आत्महत्याएं की हैं.

छत्तीसगढ़ की पुलिस के अनुसार प्रदेश में प्रतिदिन चार किसान आत्महत्या कर रहे हैं.

यदि आप छत्तीसगढ़ पुलिस के आंकड़ों पर नज़र डालें, तो दिखता है कि किसान आत्महत्या की संख्या 2003 तक लगातार घटी. उस दौरान राज्य में कांग्रेस की सरकार थी. लेकिन भाजपा की सरकार बनने के बाद यह संख्या हर साल लगातार बढ़ती रही है. छत्तीसगढ़ के कांग्रेसी नेता इन आंकड़ों का भी उपयोग नहीं कर पाते हैं.

पिछले चुनाव में बस्तर के आदिवासी इलाके की सभी सीटों पर भाजपा के जीतने के पीछे उसकी सलवा जुडूम वाली नीति को माना गया था. इस चुनाव में सलवा जुडूम के कांग्रेसी नेता महेंद्र कर्मा को तो टिकट नहीं मिल पाया, पर सलवा जुडूम विरोधी सीपीआई के मनीश कुंजम ने फिर से चुनाव लड़ा. पिछले चुनाव में अपनी हार का कारण समझाते हुए मनीश कुंजम कहते हैं कि पिछले चुनाव में गैर आदिवासी और शहरी आदिवासी वोट भाजपा को एकमुश्त मिले और ग्रामीण इलाकों में हमारे समर्थकों को नक्सलियों ने वोट नहीं डालने दिया.

आदिवासी इलाकों में इस बार आम चुनाव का प्रतिशत विधानसभा चुनाव से कम था और लोकसभा चुनाव को लेकर कोई ख़ास गहमागहमी भी नहीं थी, इसे समझाते हुए एक विश्लेषक कहते हैं, लोगों का आकर्षण ग्रामसभा के चुनाव में सबसे अधिक होता है. इसलिए कि चुना जाने वाला प्रतिनिधि उनके समीप होता है. उनसे नाली साफ कराने से लेकर राशन कार्ड बनवाने तक का काम कराया जा सकता है. उपलब्धता के कारण ही लोकसभा चुनावों में लोगों की विधानसभा चुनाव से भी कम रुचि होती है.

रायपुर में वोट नहीं डालने वाले एक युवा ने कहा यदि इनमें से कोई भी नहीं खड़ा होता तो मैं वोट डालने ज़रूर जाता. मैंने सुना है हमारे पूर्व सांसद ने पिछले पांच सालों में संसद में सिर्फ तीन सवाल पूछे और उन तीन में एक भी रायपुर के बारे में नहीं था. मुझे सांपनाथ या नागनाथ में एक चुनने में कोई रुचि नहीं है. आख़िर देश का क़ानून तो वही लोग बनाएंगे जो इनके चुनाव प्रचार में पैसा और शराब पानी की तरह बहा रहे हैं.

कौन जीतेगा और कौन हारेगा, यह फैसला छत्तीसगढ़ में तो हो गया है. इसके बारे में पता ज़रूर 16 मई को ही चलेगा, पर लोगों से बात करके यही लगता है कि कोई भी जीते, जनता तो हार ही रही है .

शुभ्रांशु चौधरी

feedback.chauthiduniya@gmail.com

दुनिया

सभी फोटो– *प्रभात पाण्डेय*

किसान करेंगे घमासान

राजनीति का मोहरा बनता आया किसान अब राजनीतिज्ञों को सबक सिखाने के मूड में आ चुका है. उसे तो अब अपना वाजिब हक़ चाहिए. भले ही यह हक़ उसे छीन कर मिले. वे उन नाकारा और बेईमान नेताओं के ख़िलाफ़ लामबंद होने लगे हैं, जिन्होंने आज तक किसानों के साथ सिर्फ़ और सिर्फ़ फरेब किया है.

जिन किसानों को ध्यान में रख कर नीतियां बनती हैं, राजनीति उन्हें ही छलने का हथियार बन रही है. रोज़ी, रोटी और कृषि संबंधी मांग को दफ़नाकर वोट, नोट और जाति– संप्रदाय आधारित राजनीति को चमकाया जा रहा है. वैसे आज तक राजनीति का मोहरा बनता आया किसान अब राजनीतिज्ञों को सबक सिखाने के मूड में आ चुका है. उसे तो अब अपना वाजिब हक़ चाहिए. भले ही यह हक़ उसे छीन कर मिले. वह उन नाकारा और बेईमान नेताओं के ख़िलाफ़ लामबंद होने लगा हैं, जिन्होंने आज तक किसानों के साथ सिर्फ़ और सिर्फ़ फरेब किया है. यही वज़ह रही कि ग्रेटर नोएडा के सिकंदराबाद के चोला औद्योगिक एरिया में आने वाले 15 गांवों के किसानों ने लोकसभा चुनाव का बहिष्कार कर डाला. यहां तक कि उन्होंने किसी भी पार्टी के उम्मीदवार को गांव में प्रचार के लिए घुसने तक नहीं दिया. इन किसानों की ज़मीन का अधिग्रहण करने के लिए 1999 में नोटिफिकेशन जारी किया गया था. यह नोटिस यूपीएसआईडीसी ने जारी किया था. किसान नेता अजित दौला बताते हैं कि उस वक्त किसानों ने नोएडा–ग्रेटर नोएडा अथॉरिटी के सामने मुआवज़े और अधिग्रहीत ज़मीन के बदले पांच प्रतिशत प्लाट देने की मांग कर आंदोलन चलाया था. यूपीएसआईडीसी ने उनकी मांग मान भी ली थी. तय हुआ था कि 405 रुपए प्रति गज़ मुआवज़ा और अधिग्रहीत ज़मीन के बदले पांच प्रतिशत प्लाट दिया जाएगा. पर इस समझौते पर आज तक अमल नहीं हुआ है. नाराज़ किसानों ने आख़िरकार खुद ही मोर्चा संभाल लिया.

जब किसानों के लिए कर्ज़ माफी की घोषणा हुई तो किसानों को लगा जैसे हाथ से निकलती ज़िंदगी वापस आ गई. पर सरकार ने कर्ज़ माफी के नाम पर जितना ढोल पीटा, उतनी राहत किसानों को नहीं मिली. उत्तर प्रदेश के बांदा ज़िले के किसान कहते हैं कि उनके यहां इक्का–दुक्का लोगों को छोड़ किसी को सरकारी घोषणा का लाभ नहीं मिला है. नेशनल क्राइम ब्यूरो की रिपोर्ट के मुताबिक पिछले साल देश भर में 16,632 किसानों ने आत्महत्या की, जिनमें 2,369 महिलाएं थीं. किसानों को राहत पैकेज़ देने के बाद भी दिसंबर 2008 तक की रिपोर्ट यह है कि देश में हर दिन 46 किसान आत्महत्या कर रहे थे.

इस देश की कुल आबादी का लगभग 72 फीसदी किसान है. यह बात अलग है कि पूरे देश के किसान हलकान हैं पर विदर्भ, बुंदेलखंड, मध्यप्रदेश और राजस्थान के किसानों की स्थिति कुछ अधिक ख़राब है. किसानों पर करीब 105012 करोड़ रुपए का कर्ज़ है. इनमें से महज़ 60,000 करोड़ रुपए ही माफ करने की घोषणा की गई थी. देश के किसानों ने व्यावसायिक बैंकों, वित्तीय संस्थानों, सहकारी और ग्रामीण बैंकों से यह कर्ज़ लिया है. सरकार की घोषणा से महज़ 82 फीसदी किसानों को ही फायदा पहुंच सकता है. महाराष्ट्र के 75 फीसदी किसानों के पास दो हेक्टेयर से भी कम ज़मीन है. जब तक राज्य सरकारें अवैध साहूकारों के ख़िलाफ़ कड़ाई से पेश नहीं आएगी, तब तक किसानों की दुश्वारियां कम नहीं होने वाली. हालांकि सोनिया गांधी ने कहा कि राहत पैकेज़ क्रांतिकारी है और इससे किसानों की बहुत सारी समस्याएं हल हो जाएंगी. ग़ौरतलब है कि एनडीए शासनकाल में किसानों को 80,000 करोड़ रुपए का कर्ज़ दिया गया था. जबकि यूपीए के शासनकाल में 2,20,000 करोड़ का कर्ज़ का किसानों को मिला.

अगर सरकार ने कर्ज़ माफी का यह फैसला चार साल पहले ले लिया होता तो हज़ारों किसानों को आत्महत्या से बचाया जा सकता था. हालांकि इस कर्ज़ माफी का लाभ महज़ चार करोड़ किसानों को ही मिलने वाला है और यह प्रतिशत खेतों में काम करने वालों का सिर्फ 40 फीसदी ही है. 60 प्रतिशत किसान अभी भी इस दायरे से बाहर हैं. सबसे बड़ी बात यह है कि सरकार की इस योजना और बजट में किसानों की दशा सुधारने के दीर्घकालिक प्रयास नहीं दिखते. कृषि को लेकर भी इसमें कई खामियां दिखती हैं. सरकार खेती के उन्हीं तरीकों को बढ़ावा देती दिख रही है, जिनके कारण पंजाब और हरियाणा में हरित क्रांति असफल हुई. यक़ीनन ये तरीके पूरे देश के लिए बड़े ही घातक सिद्ध होंगे. देश में कुल क्षेत्र का वर्षा सिंचित क्षेत्र 60 फीसदी है और यही वह क्षेत्र है जिस पर देश की 70 फीसदी जनसंख्या आश्रित है. इस दिशा में सरकार ने कुछ खास नहीं किया. बल्कि बागवानी के लिए 1100 करोड़ का प्रावधान रखा गया, जिनका किसानों के हित में कोई उपयोग नहीं है. बागवानी किसानों की नहीं बल्कि अमीरों की चीज़ है. किसानों की सीधी आय बढ़ाने के बजाय सरकार ने 24 लाख करोड़ का क्रेडिट टारगेट सामने रख दिया. इस कारण किसानों में कर्ज़ लेने की प्रवृत्ति बढ़ेगी. और, जब किसान कर्ज़ नहीं चुका पाएगा तब वह फिर से उन्हीं मुश्किलों से घिरेगा जिनसे सरकार उन्हें निकालना चाहती है. इसलिए ज़रूरत है कि कृषि क्षेत्र में निवेश बढ़ाया जाए. पिछले बीस सालों में किसी भी सरकार ने कृषि क्षेत्र में निवेश बढ़ाने की इच्छाशक्ति नहीं दिखाई. जापान और इज़रायल जैसे देशों की तुलना में भारत में प्रति हेक्टेयर निवेश नगण्य है. और तो और, सिंचाई के क्षेत्र में भी निवेश बेहद कम है. सरकार ने यह आदेश तो पारित कर दिया कि देश के सभी 578 जनपदों में कृषि अनुसंधान केन्द्रों की स्थापना की जाए, पर इस पर मुकम्मल अमल अभी तक नहीं हो पाया है. सबसे बड़ी बात यह कि आज़ादी के इतने सालों बाद भी किसानों को बाज़ार नहीं मिल पाया है. देश का किसान हाड़–तोड़ मेहनत के बाद भी अपनी फसल की वाजिब क़ीमत निर्धारित नहीं कर पाता. कृषि विशेषज्ञ सोमपाल शास्त्री कहते हैं कि किसानों के लिए बाज़ार उपलब्ध कराना बड़ी चुनौती है. सरकार को चाहिए कि वह प्रदेशों के बीच उत्पादों की आवाजाही को खोल दे, ताकि किसानों को बेहतर मौके मिलें और वे अपने उत्पादों की वाज़िब क़ीमत वसूल सकें.

बिहार जैसे राज्य में–जहां भूमि सुधार कानून सबसे पहले बना–भूमि विवादों से उपजे खूनी संघर्षों में कृषि और किसान दोनों की दुर्गति हो रही है. बिहार की खेती को बाढ़ और सुखाड़ दोनों ने ही ग्रसित कर रखा है. 1954 में राज्य की गैरमजरूआ ज़मीनों का पता लगाकर उन्हें ग़रीबों के बीच बांटने का आदेश दिया गया था, जिस पर आज तक कारगर अमल नहीं किया जा सका है. देश भर में कमोबेश यही हाल है. ज़्यादातर ज़मीनों पर बड़े भू–सामंतों का कब्ज़ा है, जो खुद खेती नहीं करते. दूसरी ओर, खेती कर सकने वाले मेहनतकश खेत मज़दूर या छोटे किसान साधनहीन होकर बेरोज़गार बैठे हुए हैं. ऐसे में कृषि उत्पादन ही अवरुद्ध हो चला है. बंटाईदारों को हक़ दिलाने के लिए बने कानून को भी ठेंगा दिखाया जा चुका है. महात्मा गांधी ने 1930 के दशक में वर्धा को स्वतंत्रता आंदोलन की धार तेज़ करने के लिए चुना था. जो बाद में दुनिया भर में वर्धा ग्राम के रूप में मशहूर हुआ. आज वही वर्धा किसानों की बदहाली और आत्महत्या के लिए जाना जाता है. हालांकि विदर्भ के अन्य इलाक़ों की तरह यहां भी सोयाबीन और कपास की खेती बड़े पैमाने पर की जाती है, पर पैदावार की सही क़ीमत का न मिलना, सरकारी उदासीनता और योजनाओं के क्रियान्यवन न होने से हालात बद से बदतर होते जा रहे हैं. हरियाणा में कुल आबादी का 80 फीसदी किसान हैं और वे फसलों की बुआई के लिए पूरी तरह नहर और ट्यूबवेल पर निर्भर रहते हैं. पहले यहां पानी 20 से 30 दिनों में छोड़ा जाता था, अब 40 से 45 दिनों में छोड़ा जाता है. डीज़ल की बढ़ती क़ीमतों से ये किसान अलग परेशान हैं. पंजाब के किसान यूनियन के नेता सरदार अजमेर सिंह लाखोवाल देश के लाखों किसानों की मांग को सीधे शब्दों में कहते हैं कि किसान जो कुछ भी पैदा करते हैं–चाहे वह दलहन हो, तिलहन हो या गेहूं या चावल– सभी का भाव या न्यूनतम समर्थन मूल्य थोक सूचकांक के हिसाब से ही तय किया जाए. किसानों की सबसे बड़ी शिकायत भी यही है कि किसानों का गेहूं सरकार जितनी क़ीमत पर लेती है, वह उसे बेचती है दोगुनी क़ीमत पर.

ज़ाहिर है, किसान आर्थिक नीतियों के ख़िलाफ़ लंबी मुहिम की तैयारी में हैं. अगर आने वाली सरकार ने भी किसान हितों की अनदेखी की, तो ये किसान फावड़े और हल के साथ खेतों के बजाए पोस्टरों और बैनरों के साथ सड़कों पर घमासान करते दिखेंगे.

महात्मा गांधी ने 1930 के दशक में वर्धा को स्वतंत्रता आंदोलन की धार तेज़ करने के लिए चुना था. जो बाद में दुनिया भर में वर्धा ग्राम के रूप में मशहूर हुआ. आज वही वर्धा किसानों की बदहाली और आत्महत्या के लिए जाना जाता है.

रूबी अरुण

ruby.chauthiduniya@gmail.com

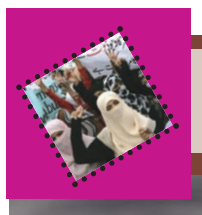

आतंकवाद को नकार दें

पाकिस्तान के संविधान का अनुच्छेद चार कहता है–
हर एक व्यक्ति को अधिकार है कि उसके साथ क़ानून के मुताबिक ही बर्ताव हो:

1 *हर एक पाकिस्तानी नागरिक, चाहे वह कहीं भी हो, और पाकिस्तान में अस्थायी तौर पर रहने वाले हर व्यक्ति कानून के संरक्षण में होगा और उसके साथ क़ानून के मुताबिक ही बर्ताव किया जाएगा. नागरिकों और व्यक्तियों का यह नैसर्गिक अधिकार है.*

2 *ख़ास तौर पर–*

- *किसी व्यक्ति की ज़िंदगी, आज़ादी, शरीर, इज़्ज़त या मिल्क़ियत को नुकसान पहुंचाने वाला कोई कदम नहीं उठाया जा सकता, सिवाय उन पाबंदियों के जो क़ानूनन एकदम जायज़ हैं.*
- *किसी व्यक्ति को वह करने से नहीं रोका जाएगा जिसपर क़ानून की पाबंदी नहीं है.*
- *किसी भी व्यक्ति को ऐसा कुछ भी करने को मज़बूर नहीं किया जाएगा जो क़ानून उसे करने की इजाज़त नहीं देता.*

संविधान का अनुच्छेद नौ कहता है
व्यक्ति की सुरक्षा : किसी भी व्यक्ति की ग़ैरक़ानूनी तरीके से जिंदगी और आज़ादी नहीं छीनी जा सकती, सिवाय क़ानून के मुताबिक.
संविधान के अनुच्छेद 25 का दूसरा भाग कहता है
महज़ लिंग के आधार पर नागरिकों और व्यक्तियों में कोई भेद नहीं किया जाएगा.

अक़्दास वहीद

हमारे संविधान की ये बातें पढ़ कर क्या आप चकित हो रहे हैं? आपका आश्चर्य लाज़िमी है, क्योंकि कोई भी पाकिस्तानी नागरिक अपने हक़ के साथ नहीं जी पा रहा है. संविधान में हक़ की ये बातें महज़ लिखने के लिए हैं. असल जिंदगी में हक़ और अधिकार के यहां कोई मायने नहीं है. आज हमारे हक़ के लिए चंद ऐसे मुसलमान दुश्मन बन चुके हैं जो खुद इस्लाम नहीं जानते. वे लोग हमें मौत दे रहे हैं, हमारी औरतों को कोड़े मार रहे हैं, और क़ानून के दायरे को आतंक व बर्बरता से भरने की कोशिश में कामयाब हो चुके हैं. वे हमें वह करने पर मज़बूर कर रहे हैं जिसकी इजाज़त क़ानून नहीं देता. वे लोग साफ तौर पर पाकिस्तानियों के उस बुनियादी हक़ को मार रहे हैं जो उन्हें हमारे संविधान और इस्लाम ने दिया है. इंसानों की जान लेकर, महिलाओं पर कोड़े बरसा कर वे लोग आख़िर किस तरह के इस्लाम का दावा कर रहे हैं? मैं भी मुसलमान हूं और मैं जानती हूं कि इस्लाम क्या कहता है. शायद इस्लाम के बारे में जो मैं जानती हूं वो ये आतंकवादी नहीं जानते. एक मुसलमान और पाकिस्तानी लड़की होने के नाते मैं इन आतंकवादियों को बताना चाहती हूं कि इस्लाम क्या है.

मुसलमान का कत्ल दूसरे मुसलमान पर हराम है.

–हदीस

अगर आप एक इंसान का कत्ल करते हैं तो वह पूरी इंसानियत के कत्ल के बराबर है.

–सहीह बुखारी शरीफ.

क्या यह जानने के बाद इन आतंकवादियों के पास कोई जवाब है कि वे क्यों बेकसूर मुसलमान बच्चों, महिलाओं और पुरुषों की हत्या कर रहे हैं? यह उनका कौन सा इस्लाम है जो इसकी गवाही या इजाज़त दे रहा है? मैं उनसे सवाल कर रही हूं कि वे कम से कम एक हदीस या कुरान की एक आयत बता दें, जो उन्हें गुनाह की इजाज़त देता है? कुरान कहता है कि मज़हब (इस्लाम) कोई पाबंदी नहीं लगाता. मतलब साफ है कि इस्लाम ऐसा मज़हब है जो पाबंदियों पर रोक लगाता है या फिर कहे दीन बिल जबर. अगर इसी तरह है तो मज़हब के नाम पर ये आतंकवादी नुमाइंदे कहां से आकर हमारे घरों में घुसकर हमें तालीम से महरूम रहने के लिए कह रहे हैं, जबकि तालीम हमारा बुनियादी हक़ है.

दुनिया के किसी दूसरे मुल्क से ज़्यादा पाकिस्तान बना है आतंकवाद का शिकार. जब पाकिस्तान खुद आतंकवाद का शिकार है, तब भी उसे ऐसा मुल्क करार दिया जा रहा है जो दुनियाभर में आतंक फैलाने के लिए जिम्मेदार है. अगर आतंक की बात करें तो सबसे पहले हम देखते हैं कि आतंकवाद क्या है और क्यों इसे इस्लाम से जोड़ा जा रहा है ?

छह दिसंबर 2001 को यूरोपीय संघ के 25 देशों के क़ानून मंत्रियों ने मिलकर आतंकवाद की नई परिभाषा बना दी. उन्होंने आतंकवाद की परिभाषा दी–

नागरिकों को गंभीर रूप से डराने, किसी सरकारी या अंतरराष्ट्रीय संस्था को उसका काम करने से रोकने या किसी देश व अंतरराष्ट्रीय संगठन के बुनियादी राजनीतिक, संवैधानिक, आर्थिक या सामाजिक ढांचे को अस्थिर या बर्बाद करने की कोशिश को आतंकवाद कहा जाएगा.

बीसवीं सदी के अंत में दुनिया ने एक बार फिर से मज़हबी कट्टरवाद की शुरुआत होते देखा. इससे दुनियाभर की सेकुलर ताकतें काफी हैरान हुईं, क्योंकि लोग मान रहे थे कि सेकुलर समाज बनने के बाद कट्टरतावाद को दोबारा ज़गह नहीं मिलेगी. वहीं उदारवादी मान्यता–कि प्रगतिशील समाज और मज़हबी विकार दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं– पर एकाएक सवालिया निशान लग गया. इसका असर हमें आतंकवाद पर लिखे जा रहे लेखों में जल्द ही मिला, जहां मज़हब को आतंकवाद के बगल में रख दिया गया.

1990 के दशक में हुए एक सर्वे के मुताबिक, आतंकवाद के लिए मज़हब का सहारा लेना आज के आतंकवाद की सबसे अहम बात है. महज पाकिस्तान ही नहीं, दुनियाभर में हो रहे रिसर्च में एक बात साफ हो रही है कि इस्लामिक आतंकवाद की अमूमन तीन वजहें हैं–पहला, जिसे पाकिस्तान और पाकिस्तानी उदारवादी हमेशा मानने से इंकार करते हैं कि अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद को केवल इस्लामिक मदरसे नहीं संचालित करते है. उसके उलट पढ़ा–लिखा मध्यवर्ग उसका बड़ा पैरोकार है. उनकी आमदनी आम आदमी से ज्यादा होती है, क्योंकि ऐसे लोगों पर एक विचारधारा का प्रभाव रहता है और ये लोग तथाकथित तौर पर इतिहास में हुई ग़लतियों को सुधारना चाहते हैं. हाल में हुई एक पश्चिमी रिसर्च में दुनियाभर से तीन सौ लोगों–जो अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद से जुड़े हैं–के बैकग्राउंड को तलाशने पर साफ हुआ कि वे लोग एक सेकुलर दुनिया से जुड़े हैं, मदरसे से उनका कोई लेना–देना नहीं है. और इन लोगों का पश्चिमी नीतियों के ख़िलाफ़ गुस्सा ही अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद के पीछे की अहम वज़ह है.

पाकिस्तान में आज आतंकवाद जड़ों तक फैल चुका है. इसके लिए धार्मिक कट्टरतावाद जितना ही पाकिस्तान सरकार का रवैया भी जिम्मेदार है. जिस तरह से पाकिस्तान ने स्वात और दीर इलाके में पिछले कई सालों से जड़ें जमा रहीं तालिबानी ताकतों को रोकने के बजाए अपनी आंखें बंद कर लीं, उसका यह परिणाम तो होना ही था.

पाकिस्तान में आतंकवाद की बात करें तो यहां आतंकवाद की दुनिया का सबसे बड़ा नाम सूफी मोहम्मद है. सूफी मोहम्मद तहरीक–ए–नज़फ–ए–शरियत–ए–मोहम्मदी (टीएनएसएम) नाम के संगठन का प्रमुख है, जिसे 2002 में आतंकवादी संगठन करार करके प्रतिबंध लगा दिया गया था. टीएनएसएम देवबंदियों का संगठन है और फिलहाल पाकिस्तान में सभी आतंकियों का प्रतिनिधि होने का दावा करता है. इस संगठन की मंशा पूरे पाकिस्तान में शरियत लागू कराने की है. टीएनएसएम खासतौर पर नॉर्थ–वेस्ट फ्रंटियर प्रोविंस के दीर, स्वात और मलाकंद जिलों में मौजूद है.

एक मुसलमान होने के नाते आज आतंकवादियों की करतूतों पर मेरे पास अलफाज़ नहीं हैं. सूफी मोहम्मद जहां एक तरफ तहरीके–ए–तालिबान पाकिस्तान को शह दे रहा है, वहीं पाकिस्तान में मज़हबी अमन–चैन से ज्यादा यहां की राजनीति में अपने मुक़ाम को तलाश रहा है. अब यह साफ हो चुका है कि पाकिस्तान में तालिबान बिना अपने मंसूबों में कामयाब हुए रुकने वाला नहीं. पाकिस्तान के लिए दुनिया की सोच कुछ ऐसी है– एक ऐसा मुल्क, जिसके पास परमाणु हथियार हैं और जो आज मध्यकालीन युग में जी रहा है. पाकिस्तान एक ऐसा मुल्क है जहां बिना दाढ़ी रखे लोगों को कोड़े मारे जाएंगे और महिलाएं अगर जुबान खोलेंगी तो उनका कत्ल कर दिया जाएगा. आज के पाकिस्तान में यह सोचना कि ऐसा नहीं हो सकता, ज़ाहिर है गलत होगा. यह ज़रूर होगा अगर हम बेज़ुबान जनता के लिए इन ताक़तों को ख़त्म नहीं कर देते, तो हालात और बिगड़ेंगे. एक युवा के नाते मैं पाकिस्तान में इस्लाम के नाम पर हो रहे इन वारदातों की निंदा करती हूं, क्योंकि हमारा मज़हब अमन पसंद और मोहब्बत का है. इसीलिए मज़हब के लोगों से मैं अपील करती हूं कि अगर आप सच्चे मुसलमान हैं तो आतंकवाद को नकार दें. इस कत्लेआम को नकार दें और देश की जनता को अमन, चैन और तरक्की के साथ जीने का मौका दें.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

पाकिस्तान में चुनौती का माहौल

पाकिस्तान के स्वात से जारी किए गए कोड़े मारने वाले वीडियो को फर्ज़ी माना जा रहा है. इस वीडियो का मकसद दुनियाभर में पाकिस्तान की छवि खराब करना है. असलियत यह है कि आज मलाकंद और स्वात में पाकिस्तान के 16 करोड़ लोगों की मर्ज़ी से शांति बहाल की जा चुकी है. हमारे नेता एक बार फिर पश्चिमी कर्ज़ लाने में सफल हुए हैं और उसे अपनी कूटनीतिक कामयाबी मान रहे हैं.

आज यह जानकर बहुत आश्चर्य हो रहा है कि हमारे नेताओं ने घरेलू लाइब्रेरी से प्यार की कहानियां हटा दी हैं और वे देश के वास्तविक मुद्दों पर बहस में लगे हैं. आज वे उस सच्चाई के बारे में सोच रहे हैं जिसे उन्होंने कॉलेज की बहस में भी कभी शामिल नहीं किया. आज हमारे राष्ट्रपति इस बात को तरज़ीह नहीं दे रहे कि तुष्टिकरण एक ख़तरनाक हथियार है और वह द्वितीय विश्वयुद्ध के लिए भी जिम्मेदार था. लेकिन आज समय बदल चुका है. हमारे राष्ट्रपति अपनी इतिहास की समझ और कूटनीति का हवाला देते हुए पश्चिमी देशों और मित्र देशों को यह बता रहे हैं कि पाकिस्तान को चरमपंथियों के कहर से बचाने के लिए एक बड़ी वित्तीय योजना की ज़रूरत है. आज यह उनकी उपलब्धि है कि वह अपनी योजना में सफल हो गए हैं. मित्र देशों से पांच बिलियन डॉलर से ज्यादा की आर्थिक मदद उनकी खुशी का इज़हार कर रहा है. इससे पहले हम अपनी कामयाबी का ढिंढोरा पीटें और सपना देखें कि कैसे 5.2 बिलियन डॉलर की मदद से हम चरमपंथ पर लगाम लगा सकते हैं, एक सच्चाई और है कि पाकिस्तान में उन लोगों के लिए कुछ नहीं बदलने वाला जो तालिबानी ताक़तों के साथ जुड़ रहे हैं और तालिबानी ताक़त को बढ़ा रहे हैं. ये लोग ग़रीब, अनपढ़ और भविष्यहीन पाकिस्तानी हैं. आर्थिक मदद में मिल रही 5.2 मिलियन डॉलर की रकम में कितना पैसा देश के महत्वपूर्ण, ख़ास लोगों के लिए बुलेट प्रूफ मर्सिडीज़ गाड़ियां खरीदने में जाएगा, ताकि हमारे नेता अपने अहम को ज्यादा से ज्यादा संतुष्ट कर सकें. हमारे राष्ट्रपति ने काफी खोजबीन के बाद बढ़ते खतरे से निबटने के लिए इतिहास के पन्नों से यह मार्शल प्लान निकाला होगा, जिसे साम्यवाद से निबटने का हथियार बनाया गया था. आज आतंकवाद से निबटने के लिए हमारे राष्ट्रपति भी वैसा ही कुछ सोच रहे हैं. हालांकि विंस्टन चर्चिल के द्वारा *आयरन कर्टेन* कहे गए साम्यवाद के खतरे से आतंकवाद का यह खतरा अलग है. हालांकि अमेरिका ने विश्व युद्ध के बाद के यूरोप को आर्थिक मंदी से बचाने के लिए खरबों अमेरिकी डॉलर निवेश किए थे, लेकिन उसके पीछे छिपा मक़सद कुछ और ही था. अमेरिका ने इस बात पर ध्यान दिया कि साम्यवाद के खतरे के ख़िलाफ़ जारी लड़ाई में उसकी अपनी अर्थव्यवस्था सबसे ज्यादा मुनाफे में रहेगी.

वास्तव में यह प्लान अपने उद्देश्य को पाने में सफल रहा. हालांकि बात अगर 2009 के हालात पर हो, तो आज साम्यवाद से विश्व व्यवस्था पर कोई खतरा नहीं है. आज का खतरा उस छिपे हुए शैतान से है, जो नफरत के सिद्धांत को प्रतिपादित कर रहा है, जो घायल है और जो उसी धर्म को अपमानित कर रहा है जिसका वह खुद को हिस्सा बता रहा है. बहरहाल, बात अगर पाकिस्तान की हो, और वहां धर्म की राजनीति करने वाले नकली मुल्लाओं को एक बार के लिए बाहर रख दिया जाए तो एक बात एकदम साफ है कि पाकिस्तान में उन लोगों के ख़िलाफ़ बग़ावत हो चुकी है जिन्होंने अंग्रेजों से हुकूमत लेकर खुद को सत्तानशीन किया था. मौजूदा विद्रोह, दिल्ली या तेलअवीव के इशारे पर नहीं चल रहा बल्कि यह विद्रोह उन निचले तबकों का है जिनका प्रतिनिधित्व वे मुल्ला कर रहे हैं जो खुद को अल्लाह का नुमाइंदा होने का दावा कर रहे हैं. इन हालात को टाला जा सकता था अगर पाकिस्तान के हर बच्चे, पुरुष या महिला को जिम्मेदाराना तालीम दी गई होती. ऐसी तालीम जो सच्चाई पर आधारित रहती और जिसमें से धार्मिक कट्टरवाद को अगल रखा गया होता. पिछले साठ सालों से हमने उस ताक़त को कमजोर किया है जो आज के इस दौर से लड़ सकती थी. धार्मिक कट्टरवाद का मुक़ाबला कर सकती थी. असहिष्णुता, गरीबी में पनपती है और खुद को ज्ञान की तेज रोशनी से दूर रखती है. पाकिस्तान के हुक्मरान अपने बच्चों को बेहतर और उच्च तालीम के लिए विदेश भेज रहे हैं, वहीं पाकिस्तान की जनता अंधकार में जी रही है. वह खुद को उन लोगों की गिरफ्त से आज़ाद नहीं करा पा रही जो उनके अनपढ़ होने का फायदा उठा कर उन्हें आतंक और डर का गुलाम बना रही है. यहां तक की वह कभी भी भूमि सुधार जैसे मुद्दे, जो उनकी रोज़ी–रोटी का सबसे बड़ा जरिया है, के लिए भी संगठित नहीं हो सके. उन्हें यह भी एहसास नहीं है कि मध्ययुगीन व्यवस्था को कायम रखने पर समाज से हिंसक विद्रोह की संभावनाएं तैयार होती हैं.

यहां अल्लाह के नाम पर तालिबानी आतंक फैलाया जा रहा. सबसे हैरतअंगेज तो यह है कि दुनिया की सबसे पुरानी सभ्यता और उसके मज़हब को आदमी की दाढ़ी की लंबाई और उसकी टोपी से आंका जा रहा है. पाकिस्तान के संदर्भ में इस नए मार्शल प्लान की विफलता पहले से ही तय है, क्योंकि आने वाला विदेशी डॉलर उनकी मदद नहीं करेगा जिसे मदद की सबसे ज्यादा ज़रूरत है. जब तक वे पैसे ज़रूरतमंद तक पहुंचेंगे, नकद राशि उड़ चुकी होगी. ठीक उसी तरह, जैसे पिछले 62 सालों में सैन्य सा असैन्य पाकिस्तानी हुक्मरानों ने किया है. इस बार फिर वही गिद्ध इस पैसे को ले उड़ेंगे.

विश्व युद्ध का मार्शल लॉ अपने मुकाम को इसलिए हासिल कर सका, क्योंकि देशों के बीच की कार्यप्रणाली (कामकाज का तरीका) सहायक थी. वहीं पाकिस्तान में एक बड़ा अंतर है. आज़ादी के बाद से ही पाकिस्तान में बनी व्यवस्था में करप्शन अंदर तक अपनी जड़ें जमा चुका है. आज पाकिस्तान सरकार के साथ–साथ समाज भी करप्शन में सिर तक डूबा है. यहां पूरी तरह से जंगल राज है और यहां की सामाजिक व्यवस्था का मूल सिद्धांत गुलामी और कत्ल को बनाया जा रहा है.

जब तक पाकिस्तान में फैले करप्शन पर लगाम नहीं लगती, यहां कुछ नहीं किया जा सकता है. करप्शन यहां जिंदगी का जरूरी अंग बन चुका है और इसे ही यहां कल्चर कहा जा सकता है. सबसे हैरतअंगेज तो यह है कि यहां की जनता भी इस करप्शन के आगे अपने घुटने टेक चुकी है. पाकिस्तानी व्यवस्था ने ज्यादातर पाकिस्तानियों की जिंदगी इसी पर तय कर दी है और वे इससे हटकर सोचने के लिए भी तैयार नहीं हैं. अल्लाह के इस देश–पाकिस्तान–में आज कोई काम बिना सरकारी तंत्र की हथेली गर्म किए नहीं होता. 60 साल से भी ज्यादा पुरानी इस भ्रष्ट व्यवस्था के सभी अंग इसी बिना पर चलते हैं. बेईमानी किसी अंग में न मिले, ऐसा नामुमकिन है. ऐसे में अगर नए मार्शल लॉ को वापस चरमपंथ से निपटने के लिए लागू किया जाता है तो इसकी संभावना बहुत कम है कि वह आम नागरिक के किसी काम आएगा. इसलिए कि वही आम आदमी पाकिस्तान के तालिबानीकरण का भी जिम्मेदार है. कुछ दिनों पहले मुझे एक सरकारी कर्मचारी ने ख़ास सलाह दी थी. बिना किसी शर्म के इस अधिकारी ने मुझसे वादा लेना चाहा कि मैं सरकारी तंत्र के लिए काफी कम पैसे में काम करने के लिए राजी हो जाऊं. वह यह भी चाहता था कि उनके बड़े अधिकारी जब भी दौरे पर आएं तो उनकी ख़ास ख़ातिरदारी हो. इस वादे के पीछे एक धमकी भी दी गई. आज सभी दलों के घोषणापत्रों में भीड़ जुटाने के वादे रहते हैं, लेकिन यह मुल्क के अवाम को साफ है कि जब असलियत सामने आती है तो सभी पार्टियों–जिसने मुल्क के साथ पिछले 60 साल से भी ज्यादा समय तक बलात्कार किया है–के मेनिफेस्टो में महज़ एक चीज़ रहती है. खाओ, पकाओ और ठूंसो, क्योंकि कल आपका समय इसके लिए ख़त्म हो जाएगा कि पाकिस्तान की भूखी अवाम की ठठरियों को चूस सकें.

चुनौती के इस माहौल में हम कुछ लोगों से अपील कर सकते हैं, जैसे कि मौजूदा सरकार की सूचना सचिव, जिन्हें आसानी से टीवी चैनलों पर पाकिस्तान की इस कूटनीतिक सफलता के लिए चीखते हुए सुना जा सकता है. वह हवाला दे रही थीं मुल्क की बढ़ती शिक्षा–दर का और आसमान की ऊंचाइयां छूती अर्थव्यवस्था का, और बता रही थीं कि यह कई मुकामों में से महज दो मुकाम हैं जो इस प्रोग्रेसिव मुल्क की ऊंचाइयां दिखा रहे हैं. हमें कम से कम उनकी इस उम्मीद पर भरोसा करना होगा, कम से कम उस कला का तो बिल्कुल कि वह अपने चेहरे पर बिना शिकन लाए ऐसा कह सकीं.

ओ ए खान

feedback.chauthiduniya@gmail.com

(लेखक एक पाकिस्तानी फिल्मकार और व्यवसायी हैं.)

feedback.chauthiduniya@gmail.com

लेखकों का शोषण करते संपादक

अनंत विजय

चंद दिनों पहले की बात है. सुबह-सुबह फोन की घंटी बजी. फोन उठाने पर आवाज़ आई कि मैं पुष्प बोल रहा हूं. चूंकि सोते-सोते फोन उठाया था, इसलिए अनायास मुंह से निकला- कौन पुष्प? उलाहने भरे स्वर में पुष्प जी ने बताया कि वह *साहित्य केसरी* के संपादक विनोद पुष्प बोल रहे हैं. तब तक मैं कुछ व्यवस्थित हो चुका था और उनके उलाहना भरे स्वर के बाद सचेत भी. इधर-उधर की बातचीत के बाद पुष्प जी ने कहा कि उनकी पत्रिका- साहित्य केसरी- के लिए मुझसे एक लेख चाहिए. मैंने छूटते ही पूछा कि लेख लिखने के कितने पैसे मिलेंगे? इतना सुनते ही पुष्प जी हत्थे से उखड़ गए और कहने लगे कि मेरी पत्रिका एक आंदोलन है और मैं आपसे एक आंदोलन में भागीदारी चाहता हूं, और आप हैं कि आंदोलन में भागीदारी के एवज में पैसे मांग रहे हैं. मैं पिछले पच्चीस वर्षों से अनियतकालीन पत्रिका निकाल रहा हूं और आजतक किसी ने आप जैसी बेशर्मी से लेख लिखने के पैसे नहीं मांगे. चूंकि पुष्प जी मेरे पैतृक शहर से हैं और पुराने साहित्यकार भी हैं, इसलिए मैं उनकी सुनता रहा और वह मुझे तमाम सिद्धांतों की घुट्टी पिलाने में जुटे रहे. मेरे जमीर, मेरी प्रतिबद्धता आदि-आदि को झकझोरने की नाकाम कोशिश करते रहे. जब वह थोड़ा रुके तो मैंने उनसे पूछा कि आप पत्रिका निकालने के लिए जो काग़ज़ खरीदते हैं उसका भुगतान करते हैं? क्या छपाई के लिए प्रेस वाले को पैसे देते हैं? क्या पैकिंग और पोस्टिंग पर खर्च करते हैं? जब इन सवालों के जबाव मुझे सकारात्मक मिले, तो फिर मैंने उनसे पूछा कि लेखकों को पैसा क्यों नहीं देते? मेरे इस सवाल का उनके पास कोई तर्कसंगत उत्तर नहीं था. ज़ाहिर था, उन्होंने फोन काट दिया. इस घटना ने मुझे विचलित कर दिया और मैं काफी देर तक इस पर विचार करता रहा कि क्या लेख लिखने के लिए पैसे मांगकर मैंने ग़लत किया? इस घटना ने मेरे सामने एक और बड़ा सवाल खड़ा कर दिया था. वह सवाल, जो हिंदी लेखकों की अस्मिता से जुड़ा था. मैं काफी देर तक हिंदी में निकल रहे सैकड़ों साहित्यिक पत्रिकाओं के बारे में सोचता रहा और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि लेखकों को मानदेय तो सिर्फ दो-तीन पत्रिकाएं ही देती हैं. आज जब कि साहित्य में कोई भी व्यावसायिक पत्रिका नहीं बची है, लेकिन लघु पत्रिकाएं धड़ाधड़ निकल रही हैं, तो इसके पीछे के गणित पर विचार करना भी जरूरी है. साहित्यिक रुझानवाला और एक लेखक के रूप में स्थापित न होने की कुंठा मन में संजोए लोगों के बीच संपादक बनने की होड़ सी लगी है. संपादक बनने का गणित है भी बेहद आसान. व्यक्तिगत संपर्कों और मित्रों की मदद से किसी तरह एक अंक निकालिए और बन जाइए संपादक. चूंकि साहित्यिक पत्रिकाएं अनियतकालीन होती हैं, इसलिए यहां भूतपूर्व होने का खतरा भी नहीं है. लघु पत्रिकाओं के ज्यादातर संपादक आज आर्थिक तंगी का रोना रोकर लेखकों को पैसे नहीं देते, लेकिन पत्रिकाओं के संपादकों के ठाठ में कोई कमी नहीं दिखाई देती है. इन साहित्यिक पत्रिकाओं के संपादकों के सरोकार भी बेहद संकुचित और व्यक्ति केंद्रित हो गए हैं. लेखकीय गरिमा या फिर साथी लेखकों के सम्मान का उन्हें कोई ख्याल नहीं है. साथी लेखकों को ये साहित्यिक संपादक *टेकन फॉर ग्रांटेड* समझते हैं. न तो उनकी मेहनत का ध्यान रखते हैं और न ही उनके लेख लिखने के दौरान हुए खर्चे, मसलन- काग़ज़, स्याही, कंप्यूटर, प्रिंटर- आदि का. संपादक नामक ये जीव अपने सहयोगी लेखकों को पहले तो इमोशनल ब्लैकमेल करते हैं और जब उससे उनका स्वार्थ नहीं सधता, तो फिर विचारधारा की धौंस देकर अपना काम निकालने की तिकड़म करते हैं.

पत्रिका निकालने के साथ ये साहित्यिक संपादक एक और खेल खेलते हैं. अब उन पर भी एक नज़र डाल लेते हैं. आजकल आपको साहित्यिक पत्रिकाओं के मोटे-मोटे विशेषांक दिख जाएंगे. कोई समकालीन कविता पर, कोई उपन्यास पर, कोई कहानियों पर, कोई आलोचना की वर्तमान दशा-दिशा पर, तो कोई फिल्म पर तो कोई किसी लेखक विशेष पर केंद्रित होता है.

दरअसल इन विशेषांकों के पीछे भी धन कमाने की जुगत होती है. विशेषांक की योजना बनाते समय ही किसी प्रकाशक को इसका सहभागी बना लिया जाता है और उनसे तय हो जाता है कि पत्रिका प्रकाशन के कुछ दिनों बाद उसे पुस्तकाकार छाप दिया जाए. प्रकाशक तय होते ही किसी विषय विशेष पर पत्रिका का अंक प्रकाशित होता है. मोटी पत्रिका के प्रकाशन में आने वाला खर्च प्रकाशक वहन करते हैं. पत्रिका का मूल्य इतना अधिक होता है या रखा जाता है कि पाठक उसको कम से कम खरीदें. बची हुई पत्रिका को पहले से तय सौदे के आधार पर प्रकाशक हार्ड कवर में डालकर पुस्तक का रूप दे देते हैं. जिसे ऊंचे दामों पर थोक सरकारी खरीद में खपा दिया जाता है. बिक्री से जो रॉयल्टी मिलती है, उसे संपादक खुद डकार जाता है और अगर लेखक किस्मतवाला हुआ तो उसे पुस्तक की एक प्रति मिल जाती है. इस प्रवृत्ति के लाभ भी हैं, लेकिन लेखकों को ईमानदारी से रायल्टी में हिस्सा तो मिलना ही चाहिए.

इस खेल में छोटे-मोटे संपादकों के अलावा कई नामचीन लेखक/संपादक भी सक्रिय हैं और साथी लेखकों का जमकर शोषण कर रहे हैं. खुद तो पत्रिका के नाम पर ऐश करते हैं और साथी लेखकों को उनका वाज़िब हक़ भी देना गंवारा नहीं. मेरे जानते ऐसी साहित्यिक पत्रिकाओं की एक लंबी फेहरिस्त है जो अपने लेखकों को एकन्नी भी नहीं देते. उल्टे उनसे ये अपेक्षा रखते हैं कि कुछ विज्ञापन का जुगाड़ कर दें या फिर कुछ प्रतियां बेचने का इंतजाम करें.

यह एक ऐसा सवाल है, जिस पर पूरी लेखक बिरादरी को गंभीरता से विचार करने की ज़रूरत है. आज हिंदी के प्रकाशकों पर गाहे-बगाहे लेखकों की रॉयल्टी हड़पने का आरोप लगता है. कुछ लेखक तो बाक़ायदा लिखकर भी इसके ख़िलाफ़ अपनी आवाज़ उठा चुके हैं, कुछ विवाद मित्रों के बीच-बचाव की वजह से सामने आने से रह जाते हैं. लेकिन मेरे जानते किसी ने भी साहित्यिक लघु पत्रिकाओं के संपादकों द्वारा लेखकों के शोषण को विषय बनाकर इसे किसी भी मंच पर उठाने की कोशिश नहीं की है. संपादकों के इस छलात्कार का जोरदार विरोध लेखकों को हर उपलब्ध मंच पर करना चाहिए, ताकि शोषण के ख़िलाफ़ अपनी रचनाओं में आवाज़ उठाने वाले खुद के शोषण को बेनकाब कर सकें. अंत में, मुझे साहित्यकार उपेंद्र नाथ अश्क से जुड़ा एक दिलचस्प प्रसंग याद आ रहा है. अश्क जी को एक बार एक एक मशहूर पत्रिका के संपादक ने समीक्षा के लिए एक पुस्तक भिजवाई. पत्रिका के साथ लिखे पत्र में संपादक ने आग्रह किया कि पुस्तक प्राप्ति की सूचना दें. अश्क जी ने पुस्तक प्राप्ति की सूचना का जो पत्र लिखा वह कुछ यूं था-

प्रिय भाई,

समीक्षा के लिए आपके द्वारा प्रेषित पुस्तक प्राप्त हुई, आभार. लेकिन पुस्तक के साथ यदि आप समीक्षा लेखन के मानदेय का चेक भी संलग्न कर देते तो मैं हुलसकर समीक्षा लिखता और उत्साह के साथ उसे आपको प्रेषित करता.

सादर आपका,

अश्क.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

आज कुछ भी अलग नहीं

ऊध्वोंन्मुखी नारंगी रंग हरे के साथ मिलकर कालिमा में बिला रहा है. *एक कहानी यह भी* हाथ में लेते ही यह आशंका जगी कि उल्लास-उमंग लाने वाले इस रंग ने सचमुच कलाकार के जीवन में अपना बलिदानी रंग तो नहीं दिखा दिया.

तीन घंटे की एक ही बैठक में इस आत्मकथात्मक उपन्यास को पढ़कर जब बंद किया तो मेरी आंखों के सामने अन्याय के विरुद्ध जुलूसों में भाग लेती और युवाओं में जोश भरती, मनचाहे साथी के साथ गृहस्थ जीवन में प्रवेश करती उस लड़की का अक्स घूम गया जो अनंत स्वप्नों के साथ देहरी पर खड़ी है. निस्संदेह उसका जीवन सुखी होना चाहिए...लेकिन नहीं...यहां भी कुछ अलग नहीं है. एक लेखिका मन्नू भंडारी अपने लेखक पति राजेन्द्र यादव के साथ सपनों का वितान लिए वैवाहिक जीवन में प्रवेश करती है.

आख़िर एक स्त्री कितने मोर्चों पर लड़े, इसकी कोई सीमा हमारे समाज ने तय नहीं की है. स्वीकारने से पूर्व ही आत्ममंथन और ऊहापोह की स्थिति में पड़ा पुरुष गृहस्थी के सुविधाभोगी आकर्षण को न त्याग सका. इस स्त्री को पति का का अहं शिला की तरह सामने मिला. उसे तोड़ने नहीं, अपितु उससे सामंजस्य बैठाने के मोर्चे पर तैनात समानधर्मी कार्यक्षेत्र की यह पथिका अपने कर्तव्य तो पूरे कर गई, पर उनका आनंद-संतोष नहीं उठा पाई.

इस रात की कभी तो सुबह होगी. मां होने, गृहस्थी के दायित्वों को पूरा करने, मित्रों का साहचर्य भोगने के साथ-साथ निरंतर लेखन कार्य में सक्रियता ने उन्हें आत्मबल दिया. कभी तो गाड़ी पटरी पर आएगी...इस आशा ने भी जब दम तोड़ दिया, तब उनका दृढ़ संकल्पी मन चट्टान को चुनौती देकर अलग हो गया.

प्रारंभ से पाई उपेक्षा के प्रतिकार के मूल में संभवतः क्रांतिकारी विचारों वाली मीरा रही होंगी, जिनका प्रशंसात्मक उल्लेख कथा के प्रारंभ में आता है.

हमारे अधिकतर पुरुष लेखकों ने कलम के साथ-साथ दूसरे हाथ में गिलास पकड़ा, पत्नी के साथ-साथ दूसरी आंख तथाकथित प्रेयसी पर लगाई, कर्तव्यों की बात बीच में छोड़ अधिकारों पर अड़ गए, संस्कारों की बात करते-करते खुद भटक गए. आख़िर समाज ने इनको इतनी तो स्वतंत्रता दी ही है. साधारण आदमी को नकार विशिष्ट होने का चोगा पहन लिया. वे भूल गए कि केवल साधारण ही स्वीकार्य है. विशिष्ट होने के लिए साधारण होना एक अहम शर्त होती है.

इस जीवन यात्रा के उतार पर रपटते इस लेखक को भी तो अपनी बीमार बच्ची और पत्नी की देखभाल न कर पाने का अहसास मथता तो होगा, अपनी आज़ादी की चाह में नकारे गृहस्थी के कर्तव्यों पर पछतावा तो होता ही होगा. आख़िर मसिजीवी के तर्कों पर एकांत में हृदयपक्ष कभी तो उफ़ान लेता होगा...यत्नपूर्वक बनाए गए उन फफोलों से मवाद तो रिसता ही होगा...

मन्नू भंडारी व्यास सम्मान से नवाज़ी गई हैं. उनकी पुस्तक-एक कहानी यह भी-का इसी आलोक में अवलोकन करते हुए मीनाक्षी अग्रवाल की यह संक्षिप्त टिप्पणी .

पिछले अंक में आपने पढ़ा कि किस तरह गुलाम हुसेन ने अपनी मौत का दिन खुद ही बता दिया. अब पढ़िए क्या सचमुच गुलाम हुसेन की बात सच साबित हुई...

मुसलमान

आबिद सुरती

आपके पापा की मौत का दिन तय था, इसका पता आपको कैसे चला?

मोगल के चले जाने के बाद उन्होंने बताया था.

क्या कहा था?

यही कि अब उनका दाना-पानी ख़त्म हुआ. वह कह रहा था, मैं कुछ नहीं समझा. उस समय मेरी उम्र ही क्या थी?

1966 का साल था. सूफ़ी दसवीं कक्षा में था. ख़ासतौर से उसका पूरा ध्यान पढ़ाई में था.

हुसेन अली की तरह मेरे पापा गुलाम हुसेन ने भी अपने अंतिम दिन की घोषणा कर दी थी. उन्होंने दाना-पानी ख़त्म हुआ जैसे अस्पष्ट शब्दों का इस्तेमाल न करके सीधे-साधे बता दिया था, कल कोई बाहर नहीं जाएगा, वरना मेरा मुंह नहीं देखेगा.

वह दिन मंगलवार का था. इसके साथ ही उन्होंने यह भी बताया था कि बुधवार को उनका देहांत नहीं हुआ तो एक दिन बाद यानी कि शुक्रवार को वे निश्चित रूप से संसार छोड़कर चले जाएंगे.

आज तक मनुष्य जीवन और उसके रहस्यों को नहीं जाना पाया. मृत्यु को समझने का प्रश्न ही नहीं पैदा होता. किसने हमारे पिताओं के कान में फूंक मारकर कहा होगा कि उनकी घड़ियां गिनी जा रही हैं? किसने उनको अंतिम यात्रा के लिए सावधान किया होगा?

मेरे पिता ने जिस तरह स्वस्थतापूर्वक अपने देहांत का एलान किया, उसे देखकर हम सब दंग रह गए थे. हमें उन पर विश्वास ही नहीं हुआ, क्योंकि उनकी बीमारी सामान्य नहीं थी.

डॉक्टरों के कहने के अनुसार उनके नाखून में भी रोग नहीं था. दूसरे, डॉक्टर यह भी स्वीकार करने के लिए राज़ी नहीं थे कि उन्हें कोई प्रेत-बाधा है. उनके अनुसार मेरे पिता मानसिक रोग के शिकार थे. पर यह मानसिक रोग क्या था? उसकी जड़ें कहां थीं? इस संबंध में एक भी डॉक्टर सही निष्कर्ष नहीं निकाल पाया था. पर हम जानते थे कि मेरे पिता चालीस दिन का चिल्ला खींचकर प्रेतात्माओं को अपने वश में करते-करते खुद उन्हीं के वश में हो गए थे.

वह रात-दिन चुपचाप अपनी चारपाई पर पड़े रहते. कभी-कभी उनकी बड़बड़ाहट सुनाई पड़ती. जैसे किसी अदृश्य मानव से बात कर रहे हों, उनके हाथ हरकत करते और थोड़ी देर चुप रहकर फिर एक बार दीवार को ताकने लगते.

इसी कारण पूरी स्वस्थता के साथ जब उन्होंने अपनी मृत्यु के दिन के बारे में सूचना दी तो हमें शंका हुई कि हमने जो कुछ सुना था वह हमारा भ्रम था, एक मानसिक रोगी की बड़बड़ाहट थी.

मेरी मां, दादी और चाचा मोहम्मद हुसेन ने साथ बैठकर इस पर गंभीर विचार किया. वे तीनों इस बात से सहमत थे कि एक दिन सावधान रहने में कोई हर्ज नहीं.

दूसरे दिन दोपहर से पहले पिताजी को दौरा पड़ा. यह दिल का दौरा था या कुछ और, यह कोई नहीं समझ सका. वह पीड़ा के कारण तड़फड़ाने लगे. एक तरफ से मेरी मां तवे पर रोटी उतारकर दौड़ी, दूसरी तरफ से मेरे चाचा और दादी.

हम कुछ समझ पाएं, इसके पहले मानो कोई चक्रवात उठकर शांत हो गया. मेरे पिताजी लेटे हुए थे, उठ कर बैठ गए. फिर बारी-बारी से हमारे चेहरे देखकर उन्होंने कहा, जाओ तुम लोग अपना काम करो. अब शुक्रवार तक मुझे कुछ नहीं होगा.

मेरे पिताजी को दौरा पड़ा था. इसमें हमें शत-प्रतिशत विश्वास हो गया कि शुक्रवार का दिन उनका अंतिम दिन होगा और सचमुच वह उनका अंतिम दिन सिद्ध हुआ .

सूफ़ी कहता है-विधाता के लेख में मीन-मेख नहीं होता है. एक ज्योतिषी ने हाथ देखकर उसका भविष्य बताया था. मैं अरबपति बनूंगा, पर मेरा जीवन संतों जैसा सादा होगा. मैं सीधे मार्ग पर क़दम रखने का प्रयास करूंगा, पर मेरे पैर दो नंबर के धंधे की दिशा में आगे बढ़ेंगे. इस महीने मैंने अपनी उमर का चालीसवां साल पूरा किया है. इन चालीस वर्षों में मैंने ईमानदारी से जीने के लिए कितने पापड़ बेले हैं, यह मेरा दिल जानता है.

जैसे?

1980 में वह पोल्ट्री फार्म के धंधे में लग गया. इसमें नहीं जमा तो झींगा मछली के होलसेल व्यापार में अपने पांव जमाए. उसमें भी रुकावटें आईं. अभी हाल में उसने एक बार फिर नया काम शुरू किया है. वह पुरानी कारें खरीदकर उनकी मरम्मत करके बेचता है.

सूफ़ी की कई बातें मेरे गले से नहीं उतरतीं. मसलन, वह कहता है हर इंसान की राह तय होती है. यानी आदमी कमज़ोर है, लाचार है. वह अपनी मर्जी से नहीं चल सकता है. तब भविष्यवाणियों का क्या मतलब?

दूसरे दिन दोपहर से पहले पिताजी को दौरा पड़ा. यह दिल का दौरा था या कुछ और, यह कोई नहीं समझ सका. वह पीड़ा के कारण तड़फड़ाने लगे. एक तरफ से मेरी मां तवे पर रोटी उतारकर दौड़ी, दूसरी तरफ से मेरे चाचा और दादी.

मैंने पूछा, मेरे भाग्य में यदि निश्चित दिन और निश्चित समय पर कार दुर्घटना लिखी हो और मैं पहले से ही यह जान जाऊं तो घर से बाहर निकलूं ही क्यों?

अगर सचमुच आपके नसीब में यह लिखा होगा तो ऐसी स्थिति ज़रूर पैदा होगी कि आपको घर से निकलना पड़े.

उसने अपने पिता का उदाहरण दिया. हुसेन अली की मृत्यु का दिन तय था. किस दिन उनकी मौत होगी, इसका पता उन्हें चल गया था.

किस तरह?

उनकी कुंडली से.

क्या उन्होंने अपनी जनम-पत्रिका बनवाई थी ?

नहीं-नहीं. असल में उन्हें भी एक ज्योतिषी मिल गया था. उनका हाथ देखकर ज्योतिषी ने कुंडली तैयार की थी. उस कुंडली के अनुसार उनकी शादी पैंतीस साल की उमर में होनी थी, हुई. इसके अलावा कई दूसरी बातें भी सही निकलीं. उनमें से एक उनकी मृत्यु के बारे में भी थी.

मौत क़रीब आई तब हुसेन अली बिलकुल दुरूस्त थे. अपनी मौत के एक दिन पहले उन्होंने पहले पत्नी को धुंधले शब्दों में चेतावनी दी थी, पर दूसरे दिन उन्होंने पूरी स्वस्थता और स्पष्टता से बता दिया था, कहा-सुना माफ़ कर देना.

स्कूल जाने की तैयारी कर रहे इक़बाल (बाल-सूफ़ी) की आंखें स्थिर हो गईं.

पत्नी गुलबानू ने पूछा, आज आप ऐसा क्यों बोल रहे हैं?

बुलावा आ गया है.

मां-बेटे दोनों की आखों में आंसू छलक आए. इक़बाल ने पाठ्यपुस्तकें वापस बस्ते में रख दीं. आज स्कूल जाने की ज़रूरत नहीं थी.

सुनो बेटे. हुसेन अली ने उसे समझाया, तुम्हारे यहां बैठने से मौत वापस थोड़े ही लौट जाएगी? जाओ, टर्मिनल एक्ज़ाम आ रही है.

बाप-बेटे के बीच थोड़ी बहस हुई. अंत में छोटे भाइयों को साथ लेकर स्कूल जाने से पहले इक़बाल ने मां से कहा, पापा को आज घर से बाहर नहीं जाने देना.

हुसेन अली दोपहर तक घर में बैठे रहे, कुरान की तिलावत करते रहे. दोपहर के खाने के बाद उन्होंने पत्नी से कहा, नुक्कड़ का एक चक्कर लगाकर आता हूं. दो-पांच मिनट में वापस लौट आऊंगा.

गुलबानू ने सोचा कि पांच मिनट में क्या फ़र्क़ पड़ जाएगा? हुसेन अली अब्बासी मंज़िल में से निकलकर पाली गली में आए. थोड़ी देर मस्जिद और उसके मीनारों को निहारते खड़े रहे. यह वही ख़ोजा मस्जिद थी, जिसमें उन्होंने वर्षों नमाज़ पढ़ी थी, दुआएं मांगी थीं, पेशइमाम की दीनी तक़रीरें सुनी थीं, मजलिसें सुनी थीं. यह मस्ज़िद खुदा का घर भी थी और उनकी ज़िंदगी का एक हिस्सा भी.

यहां से टहलते हुए वे पाली गली में आए और जेजे हॉस्पिटल की ओर आगे बढ़े. जैसे मौत ने उन्हें समय दिया हो, ठीक जगह, ठीक समय पर वे हाज़िरी देने जा रहे थे.

इस मौक़े पर एक ईरानी बोध-कथा याद आती है. एक शेख़ ने दूर से मौत को अपने घर की दिशा में आते हुए देखा और वह पिछले दरवाज़े से सटक गया. सारा दिन वह भागता रहा. अंत में जब उसे पूरा यक़ीन हो गया कि मौत अब उसके पास नहीं फटक सकती तो रात बिताने के लिए वह एक सराय में दाख़िल हुआ. जैसे ही उसने अपने कमरे में कदम रखा, उसकी नज़र मौत पर पड़ी. मौत एक कुर्सी पर बैठी थी. उसने शेख़ से कहा-भाई शेख़, मुझे यहां देखकर तुम्हें ताज्जुब हो रहा है न? पर तुम्हें यहां देखकर मुझे ज़रा भी हैरत नहीं होती. दरअसल मैं तुम्हारे घर तो तुम्हें यह बताने आया था कि तुम्हारी मौत इस सराय के इस कमरे में इस समय लिखी है.

हुसेन अली की मौत जे जे अस्पताल के गेट नंबर बारह के पास लिखी थी. पोस्टमार्टम रिपोर्ट के मुताबिक़ मौत का कारण हार्टअटैक बताया गया था.

भविष्य जानने का लाभ यह है कि...सूफ़ी ने अपनी बात पूरी की, इंसान अच्छी और बुरी दोनों घड़ियों के लिए तैयार रहे. मौत का दिन पता हो तो इंसान उसका स्वागत करने के लिए तैयारी कर सके.

घर की स्थिति पहले से ही जर्जर थी, हुसेन अली की मौत ने उसे तोड़कर चूर-चूर कर डाला. भूख, दुःख जैसे ये दोनों शत्रु फौजें लेकर चढ़ आए. दुःख का मुक़ाबला किया जा सकता है, पर भूख का क्या? दोनों छोटे भाइयों का क्या? अपनी पढ़ाई का क्या? कोठरी का किराया, दाने वाले का बिल, स्कूल की फीस- ये सब कौन भरेगा? इक़बाल परेशान हो उठा.

हुसेन अली की अंतिम इच्छा पुत्र को ग्रेजुएट बनाकर सभ्य-समाज में जगह बनाते हुए देखने की थी. इस इच्छा को पूर्ण करने का एक भी सीधा मार्ग इक़बाल के सामने नहीं था. उसने टेढ़ा रास्ता अपनाया. उसके कदम मुंडागली में से निकलकर मोगल मस्ज़िद की तरफ़ आगे बढ़ गए. मोगल यहीं रहता था.

इक़बाल को उसकी खोली में जाने की ज़रूरत नहीं पड़ी. वह अपने मकान के बाहर एक सरदारजी के साथ गप्पें मारता चाय की गुमटी पर बैठा था. इक़बाल सामने आकर खड़ा हो गया.

चाचा, उसने धीरे से कहा, काम मिलेगा?

मोगल ने हाथ हिलाकर ना कह दिया.

वह फिर से होंठ खोलने लगा तो मोगल ने उसे रोकते हुए कहा -तुम्हारी ज़रूरत थी तो मैं खुद तुम्हारे घर गया था, अब ज़रूरत नहीं है.

मोगल के सामने बैठा सरदार दोनों की बातें चुपचाप सुन रहा था. इक़बाल ने हमदर्दी का सहारा लिया, चाचा, मेरे अब्बा गुज़र गए.

तो मैं क्या करूं? वह भड़क उठा, मैंने बंबई के अनाथों का कोई ठेका नहीं ले रखा है रास्ता नाप, ज़रूरत पड़ेगी तो बुलवा लूंगा.

इक़बाल जहां था चुपचाप वहीं खड़ा रहा. अंत में जब सारी उम्मीदें डूब गईं तो वह धीरे-धीरे वापस लौटने लगा.

लड़का कौन है? सरदारजी ने, जो अब तक ख़ामोश बैठा था, पूछा.

क्यों? मोगल ने उसके चेहरे पर सवालिया नज़र डाली, तुम्हें ज़रूरत है?

अपनी लाइन का उसे कोई अनुभव है?

मोगल ने हां कहते हुए बताया, मेहनती है.

(अगले अंक में जारी)

राशिफल

(4 मई से 10 मई तक)

मेष
21 मार्च से 20 अप्रैल

बंद रास्ते फिर से खुल रहे हैं. नए लोगों से मिलना-जुलना और नए तरीके से शुरुआत करना आपके लिए फायदेमंद होगा. आप पिछले कुछ समय से विपरीत स्थितियों में डटे रहे हैं, यह अनुभव भविष्य में आपका बहुत साथ देगा. व्यावसायिक मामलों में पहले के अपने निर्णयों की सफलता के आधार पर नए निर्णय लें, लाभ होगा.

वृष
21 अप्रैल से 20 मई

जितनी जल्दी आप अपने लक्ष्य और प्रयासों को व्यवस्थित कर लें उतना बेहतर होगा. इस सप्ताह आप ऐसे परिणाम देंगे जो लोगों में आपके प्रति विश्वास जगाएगा. आप प्रभावशाली लोगों से संबंध स्थापिच करने में भी सफल होंगे. व्यावसायिक मामलों में पर्दे के पीछे का खेल आपके फायदे का होगा और आपको योजना बनाने का भरोसा देगा.

मिथुन
21 मई से 20 जून

बड़े काम और बड़ी सोच इस हफ्ते दोनों आपके साथ हैं. आपके पास अपनी जीवन का एक नया अध्याय शुरू करने के लिए काफी समय होगा. आपकी विचारों में कोई भ्रम की स्थिति नहीं होगी. इस हफ्ते आप विचार और संवाद दोनों में ही सफल हैं. व्यवसायिक मामलों में आपको कम मेहनत पर अधिक लाभ होगा.

कर्क
21 जून से 20 जुलाई

आपके लिए इस हफ्ते अच्छी स्थिति है जहां आपकी योजनाएं इनके प्रभावशाली व्यक्तियों के विचारों से मेल खा रही हैं. समस्याओं का हल करने में आप एक साथ अपनी सभी क्षमताओं का इस्तेमाल करेंगे. व्यावसायिक मामलों में नए सौदों में सफलता मिलेगी, साथ ही पुराने निर्णयों के लाभ देने का सिलसिला भी जारी रहेगा.

सिंह
21 जुलाई से 20 अगस्त

अपने तेज़ और सतर्क मस्तिष्क के बल पर इस हफ्ते आप अपने लाभ में वृद्धि और हानि को कम कर रहे हैं. नए अवसरों को भुनाते समय अनिर्णय की स्थिति हो सकती है. इसलिए ठोस अवसरों पर भरोसा करें. व्यापार में उपलब्ध संभावनाओं पर विचार करके सबसे फायदे का रास्ता चुनें, सफलता मिलेगी.

कन्या
21 अगस्त से 20 सितंबर

आप इस सप्ताह खुद के भरोसे हैं इसलिए आपको निर्णयों में अधिक समझदारी की ज़रूरत है. किसी एक को छोड़ बाकी सभी लोग आपके पक्ष में खड़े दिखेंगे. यह ऐसे तरीकों को छोड़ने का समय है जो फायदेमंद नहीं है. नए विचार आपको दूसरों से बेहतर बनाएंगे. व्यावसायिक मामलों में भी प्रतिस्पर्धा का माहौल में अच्छा काम करेंगे.

तुला
21 सितंबर से 20 अक्तूबर

इस सप्ताह आपको अवसरों को भुनाने के लिए एक आक्रामक रवैया अपनाने की ज़रूरत है. यह रवैया ही आपकी योजनाएं के क्रियान्वन में भी सहायक होगा. साथ ही आप इस हफ्ते अपनी गति तेज़ बनाए रखेंगे. व्यापार और कार्य में आप तेज़ी से हो रहे अच्छे-बुरे बदलावों को समझ कर नए लाभकारी विकल्पों को पहचान पाएंगे.

वृश्चिक
21 अक्तूबर से 20 नवंबर

यह असंशय का सप्ताह है लेकिन यह अनुभव भी हो रहा है कि बिना दिशा तय किए आगे बढ़ने से कठिनाईयां आती ही हैं. आप एक सीमित दायरे में काम कर रहे हैं. यह अधिक सुरक्षित है पर अब अपने कौशल के बेहतर प्रयोग का समय आ गया है. व्यापार में यह जोखिम से बचने का समय है.

धनु
21 नवंबर से 20 दिसंबर

आपकी विस्तृत और प्रगतिशील रणनीति, तेज़ सोच आपको कार्यकुशल व्यक्ति के तौर पर स्थापित कर रहे हैं. यह अपनी महात्वाकांक्षाओं को विस्तार देने का समय है, नए लक्ष्यों के हिसाब से अपने रवैये को बदलने भी सफलता के लिए आवश्यक है. व्यापार में अपने निर्णयों पर भरोसा जारी रखें.

मकर
21 दिसंबर से 20 जनवरी

नए अवसरों से लाभ कमाने के समय ध्यान से सोचना आपके लिए नई चुनौतियों से निपटने में कारगर साबित होगा. फिर भी अंत तक पहुंचने के लिए आपको मेहनत करनी होगी. ऐसा उपयुक्त समय ज़्यादा देर तक नहीं चलता इसलिए जल्दी से इसका लाभ उठा लें. व्यवसाय में हिस्सेदारी के एक-दो नए अवसर मिल सकते हैं.

कुंभ
21 जनवरी से 20 फरवरी

आपके रास्ते में बाधाएं कम होती जा रही हैं. आप तेज़ी से आगे बढ़ रहे हैं और सभी मामले दुगुनी गति से, दोनों में सामंजस्य बनाना ही आपकी चुनौती होगा. भविष्य के सभी प्रोजेक्टों में सफलता की पूरी संभावना है. व्यावसायिक मामलों में यह विकास और निवेश के लिए बेहतर सप्ताह है.

मीन
21 फरवरी से 20 मार्च

आपकी रणनीति और रवैये में समय के साथ बदलाव होता जा रहा है. आप अपनी इन नीतियों के बल पर महत्वपूर्ण लोगों का सहयोग पा सकेंगे. आप ने नए बदलावों के साथ बने रहेंगे. व्यापारिक मामलों में भी नई सोच के साथ योजनाएं बनाना और नए क्षेत्रों में नई साझेदारियां बनाना और फायदेमंद होगा.

वीनू संदल

feedback.chauthiduniya@gmail.com

संतों और सूफियों का संकल्प- उन्मादी तत्वों को देंगे शिकस्त

आम चुनाव के तीन चरण निबट चुके हैं. नई सरकार की उठापटक भी कुछेक दिनों में शुरू हो जाएगी. निश्चय ही यह चुनाव देश की दशा और दिशा तय करनेवाला है. ऐसे दुविधा और संशय से भरे समय में इसी मकसद को लेकर अयोध्या और देश भर के साधुओं, संतों, धर्माचार्यों और सूफी दरवेशों ने पूरे देश में घूम-घूम कर शांति का संदेश दिया. 8 अप्रैल को नई दिल्ली के प्रेस क्लब में एक प्रेस कांफ्रेंस कर शुरू होने वाली इस अमन यात्रा को पूरे देश में भरपूर समर्थन मिला और लोगों ने भी बढ़-चढ़कर हिस्सेदारी की. इस यात्रा के प्रमुख संयोजकों में से एक राम जन्मभूमि मंदिर निर्माण न्यास के महंथ जनमेजय शरण जी महाराज ने अयोध्या में हमसे खास बातचीत में इस यात्रा के उद्देश्य और उसकी परिणति पर प्रकाश डाला. महाराज ने कहा कि जिस तरह इस यात्रा को पूरे देश में समर्थन और स्नेह मिला, उससे यह बात तो साफ हो गई कि इस मुल्क का आम हिंदू और मुसलमान बेहद अमनपसंद और शांति-सौहार्द चाहनेवाला है.

जनमेजय जी ने कहा कि हमने अयोध्या में इस संकल्प-यात्रा का समापन किया, क्योंकि यह पवित्र भूमि है. उन्होंने अशोक सिंघल को अपने दायरे में रहने की भी नसीहत दी. महंत जनमेजय ने कहा कि सिंघल ने कभी कहा था कि मुसलमानों को उन्होंने दरकिनार कर दिया, लेकिन मैं उनसे पूछता हूं कि आखिर यह अधिकार उनको दिया किसने. महाराज अपनी बात आगे बढ़ाते हुए बोले कि दरअसल सिंघल एंड कंपनी और कुछ नहीं, उन्मादी तत्वों का जमावड़ा भर है. इनको चुनाव के समय ही राम जन्मभूमि की याद आती है, फिर ये तो राम को भी वनवास पर भेज देते हैं.

जनमेजय जी ने कहा कि हमने अयोध्या में इस संकल्प-यात्रा का समापन किया, क्योंकि यह पवित्र भूमि है. उन्होंने अशोक सिंघल को अपने दायरे में रहने की भी नसीहत दी. महंत जनमेजय ने कहा कि सिंघल ने कभी कहा था कि मुसलमानों को उन्होंने दरकिनार कर दिया, लेकिन मैं उनसे पूछता हूं कि आखिर यह अधिकार उनको दिया किसने. महाराज अपनी बात आगे बढ़ाते हुए बोले कि दरअसल सिंघल एंड कंपनी और कुछ नहीं, उन्मादी तत्वों का जमावड़ा भर है. इनको चुनाव के समय ही राम जन्मभूमि की याद आती है, फिर ये तो राम को भी वनवास पर भेज देते हैं.

रामजन्मभूमि की जो भी समस्या है, उसे धर्माचार्य ही मिल-जुल कर सुलझाएंगे या फिर न्यायलय इसे सुलझाएगा. महंत जी ने देश की जनता को उन्मादी ताकतों से सावधान रहने को कहा. एकता और अखंडता से ही देश का भला है. साथ ही महंत जी ने यह भी कहा कि अगर हम लोगों की शालीनता और व्यवहार को अपनाकर सिंघल जैसे लोग हमारे संकल्प से जुड़ना चाहें, तो हम उन्हें भी अपनाएंगे. उनको लेकर भी चलेंगे क्योंकि हमारा दृढ़ विश्वास है कि एकता और अखंडता से ही इस देश का भला है.

निर्गुण का गुणगान

हम इस बात को अपने पिछले लेखों में कह चुके हैं कि सनातनी होने का मतलब ही विरोध को बराबर की जगह देना है. तर्कशील होना है, वाद-विवाद को अपने जीवन में स्थान देना है. जो भी एकनिष्ठ है, एक धुरी पर ही घूमता है, लकीर का फकीर है, किसी दूसरे के विचार को मानने को तैयार नहीं है, वह सनातनी नहीं है. इसका मतलब यह नहीं कि उसे अपने विचारों पर दृढ़ नहीं होना चाहिए. मतलब केवल यह है कि दूसरे के विचारों को ग्रहण करने, उन्हें सुनने और उन पर विचार करने के बाद तर्क करने वाला ही सनातनी है. आंख मूंद कर किसी भी बात को परम सत्य मान लेने वाला या कहीं और लिखी बात को बिना तर्कशीलता के ही ध्रुव मान लेने वाला सनातनी नहीं है. वह और चाहे कुछ भी हो. इसको ऐसे भी समझा जा सकता है. सनातन धर्म में अगर साकार की उपासना होती है, तो निर्गुण का गुणगान भी. आस्तिक दर्शन है, तो नास्तिक दर्शन भी. दरअसल, सनातन धर्म की समसामयिकता इसी वजह से बची रहती है, क्योंकि यह युगीन परिस्थितियों के हिसाब से खुद को ढाल लेता है. इसका एक उदाहरण पारंपरिक तौर पर आस्तिक और नास्तिक दर्शन की मौजूदगी है.

सनातन धर्म में नास्तिक दर्शन के उद्भव के पीछे से लेकर कई तरह के मतों की उपस्थिति भी इसी वजह से है. षडदर्शन (न्याय, वैशेषिक आदि) के समानांतर चार्वाक का उद्भव भी हुआ. यह दर्शन घोर भौतिकवादी है. इहलोक की बात करता है, परलोक की सोचता भी नहीं. चार्वाक-दर्शन कहता है कि शरीर की सेवा करो, वही पूजा है. बाकी सब ढकोसला है. इसके पीछे भी सामाजिक, भौतिक और मानसिक कारण हैं. चार्वाक इसलिए पैदा हुए, क्योंकि परलोक की अधिक चिंता करनेवाले समाज में कोई भौतिकवादी नहीं होगा, तो समाज का तो संतुलन ही बिगड़ेगा. जब अध्यात्म के नाम पर ढकोसला अधिक होने लगे, यज्ञों और आहुतियों में ही अधिक संसाधन झोंके जाने लगे, तो कोई न कोई उस अजाने-अबूझे भगवान को चुनौती देने वाला भी हो ही जाएगा.

बौद्ध और जैन दर्शन (दो अन्य नास्तिक दर्शन) की उत्पत्ति के पीछे भी यही कारण है. ध्यान देने वाली बात यह है कि इन दोनों दर्शनों के प्रवर्तकों का काल भी लगभग एक समान ही है. गौतम बुद्ध का जीवनकाल 563 ईसापूर्व (जन्म) से लेकर 483 ईसापूर्व (मृत्यु) है, तो महावीर जैन का जन्म भी 599 ईसापूर्व में हुआ था. अब यह सोचने की बात है कि ठीक एक ही दौर में इस तरह के दो धुर नास्तिक चिंतनों का प्रवर्तन क्यों हुआ? क्यों दो चिंतकों ने पूरी तरह से वैदिक दर्शन को खारिज़ कर दिया, पुनर्जन्म को नकार दिया और हरेक तरह के कर्मकांड की बुरी तरह भर्त्सना की.

इसके पीछे कारण समाज के बदलते हुए मूल्य और आवश्यकताएं हैं. बुद्ध और महावीर के समय का समाज जाहिर तौर पर कर्मकांड के बंधनों में जकड़ा हुआ था. मनों हवन सामग्री आग में झोंक रहा था, पशुओं की बलि दे रहा था और पुरोहितों ने पूरे समाज को अपना बंधुआ मज़दूर बना रखा था. किसी को खाने के दाने नसीब हों-न हों, लेकिन उसे पुरोहित को दान और दक्षिणा देनी ही पड़ती थी. जाहिर तौर पर, समाज के मध्यवर्ग या निम्नवर्ग के पास कर्मकांड और पुरोहितों के दो पाटों के बीच पिसने के अलावा कोई चारा नहीं था. यहीं से विरोध की लहर उठती है. यहीं बुद्ध और महावीर पैदा होते हैं. सनातन धर्म की विशेषता ही यही है कि जब भी इसके अंदर प्रदूषण पैदा होता है, उसकी सफाई के लिए खुद इसके अंदर से ही एक प्रवर्तक, एक सुधारक या एक विचारक पैदा होता है. वह विचारक एक ऐसा झटका देता है कि महसूस होता है कि सनातन धर्म की चूलें हिल जाएंगी, लेकिन सनातन धर्म खुद में आवश्यक सुधार कर फिर से गतिशील हो जाता है. यह गतिशीलता और जीवंतता ही सनातन धर्म की प्राणवायु है.

वैसे भी, धर्म को बनाया किसने? हम इंसानों ने ही न. धर्म आख़िर इंसानों के जीवन को नियमित और सुलभ बनाने का एक जरिया ही तो है. अगर वही धर्म इंसानों के जीवन को ही अवरुद्ध करने लगे, तो उसके अंदर ही एक विद्रोह की, एक टूट की और एक काट की व्यवस्था होती ही है. सनातन धर्म में बौद्ध और जैन दर्शन का प्रादुर्भाव यही दिखाता है. उन्होंने तत्कालीन समाज की तमाम विषंगतियों, पाखंड और ढकोसलों का जमकर विरोध किया. धर्म के सही स्वरूप को दिखलाने और लोगों को समझाने की कोशिश की. यह हालांकि बिल्कुल अलग और हास्यास्पद बात है कि बाद में खुद जैनों और बौद्धों में भी वही कुरीतियां और बुराइयां आ गईं, जिसका उन्होंने सनातन धर्म में विरोध किया था. गौतम बुद्ध की मूर्तियों को पूजा जाने लगा, उनके विचार भुला दिए गए. जैन महावीर की विशालकाय मूर्तियों के महामस्तकाभिषेक के नाम पर हज़ारों रुपए बर्बाद होने लगे और दोनों की शिक्षाओं को दफन कर उनकी जगह विशालकाय मठ बना दिए गए. एकता और प्रेम का संदेश देने वाले महावीर और बुद्ध के अनुयायियों ने उन्हें ही दो धड़ों (श्वेतांबर और दिगंबर, हीनयान और महायान) में बांट दिया. यह भी शायद सनातन धर्म की ही विशेषता है कि यह अपने विरुद्ध आनेवाली धारा को कुछ समय बाद खुद में ही आत्मसात कर लेता है. बुद्ध और महावीर को भी दशावतारों में शामिल कर लेता है.

वैसे यह पूरी मानवता की ही समस्या नहीं है क्या? आख़िर करुणा और प्रेम का संदेश देने वाले क्राइस्ट के अनुयायियों ने भी तो उनके नाम पर क्या कुछ नहीं किया. ख़ैर, इस विषय पर विस्तार से चर्चा फिर कभी.

व्यालोक

Vyalok.chauthiduniya@gmail.com

सोनी ने पेश किया टीएवी-एल1 और होम थिएटर सिस्टम

सोनी ने अपना ताज़ातरीन उत्पाद टीएवी-एल1 एलसीडी टीवी और होम थिएटर सिस्टम पेश किया है. सब कुछ एक में ही देने वाला यह सिस्टम एचडीटीवी और सारे कल-पुर्ज़ों के साथ लैस है, जो ज़रूरी हैं एक होम थिएटर सिस्टम के लिए.

सोनी के इस सिस्टम में एक स्वचालित ऑडियो यूनिट भी है, जो पुश बटन तकनीक पर आधारित है. इसके बाद ही खुल जाता है 32 इंच का फ्लैट पैनल एचडीटीवी. सोनी के इस होम थिएटर में ऐसी व्यवस्था है कि यह किसी भी डीवीडी, सीडी या एसएसीडी को चला सकता है, रीड कर सकता है. तरंगों को नियंत्रित रखने के लिए इसमें दो सबवूफर्स भी लगाए गए हैं, ताकि मिल सके आपको बेहतरीन आवाज़. साथ ही इसमें है मास्टर डिज़िटल एम्प्लीफायर और सोनी का ख़ास एस-फोर्स सराउंड साउंड. इससे मिलती है आपको सबसे बेहतर ध्वनि और आप रहते हैं बिल्कुल सच के करीब. इसके साथ ही मिलता है आपको एक प्री-प्रोग्राम्ड रिमोट कंट्रोल और डॉल्बी डिज़िटल.

सोनी के इस सिस्टम में एक स्वचालित ऑडियो यूनिट भी है, जो पुश बटन तकनीक पर आधारित है. इसके बाद ही खुल जाता है 32 इंच का फ्लैट पैनल एचडीटीवी.

इसकी क़ीमत है 4000 डॉलर और यह बाज़ार में अगस्त से उलब्ध होगा. सितंबर के बाद से ही आपको अतिरिक्त स्पीकर ग्रिल्स की भी मिलने लगेगी.

अलार्म क्लॉक

सुबह ऑफिस के लिए लेट हो जाना या कॉलेज देर से पहुंचना कई लोगों के लिए एक बड़ी समस्या है. आम घड़ियों में लगे अलार्म से भी कोई ख़ास फायदा नहीं होता है. सुबह की नींद होती ही इतनी प्यारी है, लेकिन सही वक्त पर काम पर या क्लास में पहुंचना भी तो ज़रूरी है. ऐसे में आपकी इस समस्या के निदान के लिए एक अनोखी अलार्म घड़ी मार्केट में आ गई है. इसमें जगाने के इतने अलग-अलग तरीके मौज़ूद हैं कि यह आपको सुबह में जगा कर ही मानेगी. फिर चाहे आप कितने भी थके हुए क्यों न हों. अगर आपको लगता है कि मात्र एक घंटी आपको जगाने में असफल रहेगी, तो आप इसमें कई अन्य विकल्पसेट कर सकते हैं.

इसमें मौजूद विकल्पों में से एक विकल्पइसमें लगी लेड लाइट भी है. यह लेड लाइट सुबह में निर्धारित समय पर चमकने लगती है और आपके सुनहरे सपनों में खलल डाल ही देती है. इसके अतिरिक्त इसमें अलार्म की आवाज़ को भी आप इच्छानुसार सेट कर सकते हैं. अगर आपकी नींद इससे भी न खुले तो इस अलार्म में कई और उपाय हैं.

जरा सोचिए, अगर सुबह में कोई आकर ज़ोर से आपका बिस्तर झकझोर दे, तब क्या आप सो पाएंगे? लेकिन इसके लिए भी किसी व्यक्ति को कष्ट उठाने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी, क्योंकि यह सुविधा भी इस अलार्म घड़ी में उपलब्ध है. इस घड़ी में एक शॉकर लगा हुआ है जो अलार्म बजने के साथ ही वाइब्रेट होना शुरू कर देता है. इसका वाइब्रेशन वाकई में इतना तेज़ होता है कि आपके बिस्तर को हिला कर रख दे. ऐसे में, आप कितना भी जतन कर लें सोना मुश्किल ही है.

अगर इन सबसे भी आपकी नींद न खुले, तो यह घड़ी आपके फोन को भी बजा सकती है. आपके फोन की घंटी बजने लगेगी और न चाहते हुए भी फोन उठाने के लिए तो उठना ही पड़ेगा.

मतलब किसी भी तरह यह आपको जगा कर ही मानेगी.

भले ही सुबह-सुबह इसके बजने से आपको कोफ्त हो लेकिन सही समय पर दफ्तर पहुंचने के बाद आप इसे दुआएं ही देंगे. और अगर आप इसकी बैटरी को लेकर चिंतित हैं, तो जरा भी परेशान न हों. इसलिए कि इस घड़ी में 9-वी का बैटरी बैक अप भी है. यानी आपका अलार्म एक बार चार्ज होने पर कई दिन बिना चार्ज हुए भी आपको जगाने का काम निपुणता से कर सकता है. बाज़ार में इस मल्टीटास्कर की कीमत मात्र 4250 रुपए है.

आपके कंप्यूटर का रक्षक

कंप्यूटर की दुनिया में भी एक जंग हमेशा चलती रहती है. अपने कंप्यूटर में हम जो भी काम करते हैं वह हमें बड़ा प्यारा होता है, लेकिन हमारे इस प्यारे डाटा पर वायरस की बुरी नज़र रहती है, जो उसे नष्ट कर देना चाहता है. ऐसे में वायरस के ख़िलाफ़ हमारा रक्षक बनता है एंटी वायरस. एंटी वायरस हमारे कंप्यूटर में आने वाले वायरस यानी ख़राब प्रोग्रामों को पहचान कर उन्हें नष्ट कर देता है. एंटी वायरस भी दरअसल एक तरह का वायरस ही होता है, लेकिन केवल ऐसे प्रोग्राम के ख़िलाफ़ जो आपके डाटा को नुकसान पहुंचाने वाले होते हैं. आजकल नेटवर्किंग के बढ़ते चलन से वायरस बड़ी आसानी से कंप्यूटर में आ जाते हैं, ऐसे में एंटी वायरस का महत्व भी बढ़ गया है.

अभी हाल में ही हुए सर्वे से पता चला कि दुनिया में एवीजी एंटी वायरस फ्री एडीशन सबसे ज़्यादा डाउनलोड होने वाला सॉफ्टवेयर है. इसकी सबसे बड़ी ख़ासियत है कि यह मुफ्त डाउनलोड होता है. इसमें बैकग्राउंड में काम करने की क्षमता है, जिससे स्कैनिंग करते समय कंप्यूटर की गति धीमी नहीं होती. सबसे ज़्यादा डाउनलोड होने वाले सॉफ्टवेयरों में टॉप पांच एंटी वायरस ही हैं. सबसे ज़्यादा डाउनलोड होने वाले एंटी वायरस हैं- एवीजी फ्री एडीशन, अवीवा, एवस्ट होम, एवस्ट प्रोफेशनल और एवीजी. इन सॉफ्टवेयरों के दम पर ही बड़े काम की जानकारियां वायरस अटैक से बची रह पाती हैं.

ला सी ने लांच किया नया हार्डवेयर

मैकवर्ल्ड पुरस्कार 2009 में नामांकित हो चुकी ला सी ने नया धमाका किया है. कंपनी ने बाज़ार में अपना नया दमदार हार्डवेयर उतारा है. इस हार्डड्राइव का नाम है ला सी रग्ड एक्स एल. यह ला सी रग्ड सीरीज़ का सबसे नया अवतार है. इसे ला सी कंपनी का अब तक का सबसे दमदार हार्डवेयर माना जा रहा है.

हार्डड्राइव का किसी भी कंप्यूटर के लिए सबसे ज़रूरी होता है क्योंकि कोई भी परमानेंट डाटा वहीं स्टोर होता है. कभी-कभी कुछ डाटा अपने साथ लेकर चलने की ज़रूरत पड़ती है. ऐसे में एक्सटर्नल ड्राइव की ज़रूरत आ पड़ती है.

ला सी रग्ड एक्स एल हार्डवेयर ड्राइव की क्षमता को दोगुना कर देता है. इसकी डिज़ाइन नई तरह की है और कंपनी का दावा है कि इसका टिकाऊपन बना देता है इसे और भी बेहतर. इस बार इसे और भी मज़बूत बनाया गया है. आपके डेस्कटॉप की सुरक्षा के लिए एक शानदार अल्यूमीनियम का कवर बनाया गया है.

ला सी रग्ड एक्स एल को डिज़ाइन किया है बेहतरीन इंजीनियर नील पाउल्टन ने. नील इससे पहले भी ला सी के कई बेहतरीन उपकरण बना चुके हैं.

ला सी रगेड एक्स एल में एक इंटरनल बंपर है जो कि गर्मी को कम करने की भी क्षमता रखता है. यह इंटरनल बंपर आपके कंप्यूटर को बनाता है और भी शानदार और तेज़. यह हार्डवेयर काफी लंबे अर्से की बैकअप क्षमता से लैस है. यह हार्ड ड्राइव में यूएसबी (यूनिवर्सल सीरियल बस) को और क्षमतावान भी बनाता है. यानी डाटा ट्रांसफर और तेज़ हो जाता है.

यह हार्डवेयर पर्सनल कंप्यूटर के साथ ही एप्पल के मैक सीरीज़ के लिए भी एक समान काम करता है और इसके साथ है इंटीगो बैकअप असिस्टेंट सॉफ्टवेयर के साथ, जो बनाता है इसे मैक इस्तेमाल करनेवालों के लिए और भी खास. इसकी क़ीमत है केवल 139.99 पौंड यानी करीब 9100 रुपए.

वॉकिंग असिस्टेंस

उमर के साथ घुटनों में तकलीफ होना आजकल आम बात है. ऐसे में बड़े बुजुर्गों या रोगियों के लिए चल कर लंबा सफर तय करना एक बड़ी चुनौती बन जाता है. साथ ही सीढ़ियां चढ़ना भी मुश्किल होता है. अब होंडा मोटर्स कंपनी लिमिटेड उनकी इसी समस्या के समाधान के लिए वॉकिंग असिस्टेंस नाम की एक मशीन लांच की है.

यह मशीन उन लोगों के लिए वरदान की तरह है, जिन्हें उम्र के कारण या किसी और कारणवश चलने फिरने में तकलीफ होती है. कंपनी इस मशीन के विकास पर पिछले दस सालों से लगातार काम कर रही थी.

वॉकिंग रोबोट की तरह यह डिवाइस भी होंडा की कम्यूलेटिव स्टडी ऑफ ह्यूमन वॉकिंग पर आधारित है. इसका सीपीयू (सेंट्रल प्रोसेसिंग यूनिट) चलते समय हिप ऐंगल (कमर की हरकतों) की मूवमेंट से जानकारी लेकर डिवाइस को निर्देश देता है, जो कि व्यक्ति को आसानी से चलने में मदद करता है. इस मशीन के द्वारा चलने-फिरने में लगने वाली मेहनत कम हो जाती है.

सरल डिज़ाइन के कारण इसे इस्तेमाल करना किसी के लिए भी बेहद आसान होता है. बेल्ट के साथ पहने जाने वाले इस डिवाइस का वजन मात्र 2.8 किलो है. वॉकिंग असिस्टेंस बाज़ार में छोटे, मीडियम और बड़ी साइज़ में उपलब्ध है. एक बार चार्ज होने के बाद यह डिवाइस दो घंटे तक काम कर सकता है.

क्रॉनिकल्स ऑफ रीडिक : असॉल्ट ऑन एथेना

यह क्रॉनिकल्स ऑफ रीडिक गेम सीरीज़ का दूसरा भाग है. जिन्होंने पहला वर्ज़न खेला हो वह जानते हैं कि रीडिक नाम के व्यक्ति के कारनामों के इर्द-गिर्द घूमते इस गेम में एक्शन और स्पेशल इफेक्ट्स की कोई कमी नहीं है. गेम की शुरुआत में रीडिक एक ऐसे जहाज़ पर पहुंच जाता है जहां इंसानों को पकड़ कर दानवों में बदला जा रहा है.

मशहूर अभिनेता वीन डीज़ल से मिलते-जुलते रीडिक का किरदार इन बुरे पात्रों की जमकर धुनाई करता है.

गेम के डिज़ाइनर इससे पहले द डार्कनेस जैसा गेम बना चुके हैं, इसलिए उनसे बेहतरीन विजुअल इफेक्ट्स वाले गेम की उम्मीद की जाती है. गेम में इफेक्ट्स के साथ-साथ एक कहानी भी चलती रहती है. यह कहानी ही इस गेम की अपील को बढ़ाती है.

एनिमेशन के मामले में भी यह गेम लाजवाब है. एनिमेटेड पात्रों के चेहरों पर भाव असली जैसे उभरते हैं.

मशहूर अभिनेता वीन डीज़ल से मिलते-जुलते रीडिक का किरदार इन बुरे पात्रों की जमकर धुनाई करता है. गेम में इफेक्ट्स के साथ-साथ एक कहानी भी चलती रहती है.

साथ ही आसपास की दुनिया भी भरोसे की हद तक सच्ची नज़र आती है. आमने-सामने की लड़ाई के दृश्यों में जो मज़ा आता है वह अद्भुत है.

चेहरे पर चाकुओं के टकराने का प्रभाव उभर कर सामने आता है. धीरे-धीरे रीडिक चाकुओं के बाद बंदूकों का इस्तेमाल करता है. इसके बाद गेम हिंसक होता जाता है. क्रॉनिकल गेम के पुराने प्रशंसकों को शायद यह बदलाव रास न आए, क्योंकि इस गेम की ख़ासियत रीडिक का निहत्थे ही दुश्मनों को धूल चटाना था. गेम के कई आलोचक इसे पुराने वर्ज़न एस्केप फ्रॉम बूचर बे से कमज़ोर मान रहे हैं. लेकिन इतना तो तय है कि इस बार कई बेहतरीन बदलाव करके गेम को और मज़ेदार बनाया गया है. गेम का आधा हिस्सा इतना शानदार है कि आप बाकी कमियों को भूल जाते हैं. पूरा गेम किसी हॉलीवुड की फिल्म के बराबर का मज़ा देता है.

आईपीएल में बोझ बने बड़े नाम

कहावत है कि महंगा रोए एक बार, सस्ता रोए बार-बार. लेकिन लगता है कि इंडियन प्रीमियर लीग (आईपीएल) में यह बात उलटी साबित हो रही है. अगर आईपीएल के दूसरे संस्करण पर नज़र डालें तो नीलामी-बोलियों के खेल में जो महंगे नाम थे, वे बल्ले-गेंद के खेल में बड़े सस्ते साबित हो रहे हैं. जिन खिलाड़ियों पर उनकी टीमों ने सबसे ज़्यादा पैसे खर्च किए हैं वे या तो फ्लॉप हो रहे हैं या अपने खेल के कारण अधिक ही महंगे पड़ रहे हैं.

आईपीएल के दूसरे संस्करण में सबसे महंगे खिलाड़ियों के तौर पर धमाकेदार एंट्री मारने वाले एंड्रयू फ्लिंटॉफ और केविन पीटरसन का हाल सबसे ख़राब है. करीब आठ करोड़ (1.55 डॉलर) की फीस पर आईपीएल में आने वाले दोनों खिलाड़ी अब तक के सबसे महंगे खिलाड़ी थे. इससे पहले आईपीएल-1 में साइमंड्स जैसे खिलाड़ियों को ऊंची बोलियां लगाकर ख़रीदा गया था.

इस साल जिस धूम से इंग्लैंड के हरफनमौला फ्लिंटॉफ आईपीएल में आए थे, उसी तेज़ी से उनकी वापसी भी हो गई. घुटने में चोट से उनको इंग्लैंड वापस जाना पड़ गया है. लेकिन जिस तरह का प्रदर्शन उन्होंने अब तक आईपीएल में दिखाया है उससे लगता नहीं कि उनकी टीम- चेन्नई सुपर किंग्स- उन्हें बहुत ज़्यादा मिस करने वाली है.

फ्लिंटॉफ ने अभी तक तीन मैचों में 105 रन खर्च कर बस तीन विकेट झटके थे और बल्ले से बस 62 रन ही बना पाए थे. आईपीएल में पहला छक्का भी के इस सबसे महंगे खिलाड़ी की ही गेंद पर लगा था. अब यह प्रदर्शन तो आठ करोड़ वाला नहीं माना जा सकता.

उधर, उनके साथी केविन पीटरसन तो सीधे कप्तान बनकर आईपीएल में उतरे थे. लेकिन बेंगलुरू रॉयल चैलेंजर्स टीम के लिए उनका खेल उम्मीद के मुताबिक नहीं रहा है. उन्होंने चार मैचों में बस 43 रन बनाए हैं. अब इस प्रदर्शन से तो उनकी टीम के मालिक के पैसे वसूल होने से रहे.

बात सिर्फ इन दोनों की नहीं है, ऐसे कई और बड़े खिलाड़ी हैं जो इस आईपीएल में बुरी तरह से फेल हो रहे हैं. पिछली आईपीएल में भी महंगे दामों पर खरीदे गए आफरीदी, गिब्स, साइमंड्स, पोंटिंग जैसे खिलाड़ी बुरी तरह से फेल रहे थे. इससे सबसे महंगी टीमें मुंबई, बेंगलुरू और हैदराबाद बुरी तरह से पिछड़ गईं थीं और ख़िताब उस राजस्थान की टीम के हाथ लग गया था जिसने सबसे कम ख़र्च किया था.

क्रिकेट में आईपीएल माने पैसा, बिज़नेस. अब यही बिज़नेस खेल को बिगाड़ रहा है. दरअसल आईपीएल की टीमों को चलाने वाले इस खेल को बाज़ार की नज़र से देखते हैं. उन्हें पीटरसन और फ्लिंटॉफ जैसे बड़े खिलाड़ियों में एक बिकाऊ ब्रांड नज़र आता है. इस ब्रांड को चमकाने का भी पूरा इंतजाम किया जाता है.

खिलाड़ियों की ऐसी इमेज़ बनाई जाती है जो बाज़ार में चमक सके. अब पीटरसन और फ्लिंटॉफ जैसे खिलाड़ियों को नीलामी में हाथो-हाथ लेने वाली टीमें इनसे उस तरह के प्रदर्शन की उम्मीद भी कर रही हैं जैसी ब्रांड इमेज़ तैयार की गई है. साफ है कि इस पूरे खेल में क्रिकेट कहीं छूट गया है और अपनी इमेज़ के बूते खेल रहे ये क्रिकेटर भी फ्लॉप साबित होते जा रहे हैं. क्रिकेट के खेल में सबसे बड़ा शॉट छक्का होता है, लेकिन जब आठ करोड़ का खिलाड़ी अठ्ठा लगाने की कोशिश करता है तो उसका औंधे मुंह गिरना तय ही है.

क्रिकेट में आईपीएल माने पैसा, बिज़नेस. अब यही बिज़नेस खेल को बिगाड़ रहा है. दरअसल आईपीएल की टीमों को चलाने वाले इस खेल को बाज़ार की नज़र से देखते हैं. उन्हें पीटरसन और फ्लिंटॉफ जैसे बड़े खिलाड़ियों में एक बिकाऊ ब्रांड नज़र आता है. इस ब्रांड को चमकाने का भी पूरा इंतजाम किया जाता है. खिलाड़ियों की ऐसी इमेज़ बनाई जाती है जो बाज़ार में चमक सके.

आईपीएल की भूल को टेनिस ने भुगता

जिसकी आशंका थी, वही होना शुरू हो गया है. सुरक्षा की आड़ में विदेशी टीमों ने भारत का दौरा रद्द करना शुरू कर दिया. आईपीएल के दक्षिण अफ्रीका जाने का दुष्परिणाम भारत में अन्य खेल भुगतने लगे हैं. आस्ट्रेलिया ने अगले महीने चेन्नई में होने वाले डेविस कप में खेलने से मना कर दिया है. तर्क वही कि एक तो पूरे एशिया में ही आतंकवादी खतरे अधिक हैं, दूसरे भारत में इन दिनों चल रहे चुनाव के कारण वहां सुरक्षा को लेकर चिंता हमेशा बनी रहती है. ग़ौरतलब है कि आठ से दस मई के बीच चेन्नई में एशिया-ओसियाना ग्रुप-एक के तीसरे राउंड का टेनिस मुकाबला होना था. आस्ट्रेलिया ने भारत के साथ डेविस कप न खेलने का फैसला साल भर के प्रतिबंध लगने की आशंका के बावजूद किया है. जबकि अंतरराष्ट्रीय टेनिस संघ (आईटीएफ) ने यह मैच भारत से बाहर कराने की आस्ट्रेलियाई मांग ठुकरा दी थी. आईटीएफ का यह कहना सही था कि जब भारत सरकार दक्षिणी राज्य में सुरक्षा व्यवस्था को ठीक बता रही है, तो हमें उसकी बात माननी चाहिए. लेकिन टेनिस आस्ट्रेलिया (टीए) के अध्यक्ष ज्यॉफ़ पोलार्ड ने एक बयान जारी कर कहा कि हमारे पास इस फैसले के अलावा और कोई विकल्प नहीं है. उन्होंने कहा कि दुर्भाग्यपूर्ण होते हुए भी हम दौरा रद्द करने को मज़बूर हैं. पोलार्ड ने कहा-सुरक्षा के लिहाज़ से काफी जोख़िम माने जाने वाले क्षेत्र में अपने खिलाड़ियों को भेजना किसी भी रूप में उचित नहीं हो सकता. कुछ चीज़ें ऐसी हैं, जो टेनिस से भी महत्वपूर्ण हैं. इनमें जीवन की रक्षा सर्वोपरि है. पिछले महीने लाहौर में श्रीलंकाई क्रिकेटरों पर हुआ हमला भारतीय उपमहाद्वीप में सुरक्षा व्यवस्था पर सवालिया निशान लगाता है.

भारत का दौरा रद्द करने से टेनिस आस्ट्रेलिया पर एक साल के प्रतिबंध के अलावा एक लाख डॉलर का जुर्माना भी लग सकता है. भारत दौरे के लिए घोषित टीम से नाम वापस लेने वाले हेविट और क्रिस गुसियोन के ख़िलाफ़ भी अंतरराष्ट्रीय टेनिस संघ कार्रवाई कर सकता है. इस बीच, डेविस कप टीम के कप्तान जॉन फ़िट्ज़गेराल्ड ने चुनाव के समय भारत में मैच की तारीख़ तय करने के लिए आईटीएफ की कड़ी आलोचना की है. इस पूरे मामले में टेनिस आस्ट्रेलिया ने आईपीएल की जिस तरह आड़ ली है, वह चिंता में डालने वाला है. उसका यह तर्क ख़तरनाक है कि जब भारत सरकार ही चुनाव के समय सुरक्षा कारणों से आईपीएल कराने को तैयार नहीं हुई, तो डेविस कप ही वहां इन दिनों क्यों हो. ग़ौरतलब है कि केंद्र और कई राज्य सरकारों के सुरक्षा कारणों से हाथ खींच लेने के बाद आईपीएल के मैच इन दिनों दक्षिण अफ्रीका में चल रहे हैं. देसी टूर्नामेंट होते हुए भी, आईपीएल के मैच इस बार विदेशी धरती पर खेले जा रहे हैं. इतिहास में इस तरह की यह पहली घटना है. जिन दिनों आईपीएल विदेश ले जाने का फैसला किया गया था, तभी यह आशंका जताई जाने लगी थी कि विदेशी टीमें इसका अपने हित में इस्तेमाल कर सकती हैं. सुरक्षा कारणों से जब-तब टूर्नामेंट रद्द कराए जाएंगे. और, दुर्भाग्य से यह होना शुरू हो गया है. इसकी शुरुआत उसी आस्ट्रेलिया ने की है, जो क्रिकेट में एशियाई देशों की बढ़ती ताक़त से पहले से ही परेशान है. मैदान में जब उसके लिए एशियाई देशों को पीटना मुश्किल हो रहा है, तब उसने फाउल खेलना शुरू कर दिया है. बहरहाल, आस्ट्रेलिया के न खेलने से भारत को इस राउंड का विजेता घोषित कर दिया गया है.

भारत का दौरा रद्द करने से टेनिस आस्ट्रेलिया पर एक साल के प्रतिबंध के अलावा एक लाख डॉलर का जुर्माना भी लग सकता है. भारत दौरे के लिए घोषित टीम से नाम वापस लेने वाले हेविट और क्रिस गुसियोन के ख़िलाफ़ भी अंतरराष्ट्रीय टेनिस संघ कार्रवाई कर सकता है.

आख़िर सरकार जगी तो

अपने माही और भज्जी को इसका श्रेय तो देना ही चाहिए कि उन्होंने पुरस्कारों के मामले में अक्सर सोई रहने वाली सरकार को जगा दिया. सरकार के सोए रहने का ही परिणाम है कि इस बार जिन खिलाड़ियों को पद्म पुरस्कार दिए गए, उनमें बीजिंग ओलंपिक में रजत और कांस्य जीतने वाले दो नाम नहीं थे. शायद यह अभिनव बिंद्रा के जीते गोल्ड की गूंज थी कि उनके मामले में सरकार समय पर ही जग गई और पद्म पुरस्कार से सम्मानित भी कर दिया गया. वरना महेंद्र सिंह धोनी और हरभजन सिंह ने तो क्रिकेट की चौंध में चौंधियाए रहने वाले इस देश की शान को बट्टा लगा ही दिया था. राष्ट्रपति से पद्मश्री लेने दोनों ही नहीं पहुंचे. इस पर मचे शोर से जगे खेल मंत्रालय ने गृह मंत्रालय को एक पत्र लिख भेजा. मज़मून कुछ यूं है कि अब से भारत में दिए जाने वाले खेल पुरस्कारों को ग्रहण करने के संबंध में मौजूदा नियमों में बदलाव किया जाए. यानी ऐसा नियम हो कि पुरस्कार ग्रहण करने के लिए खिलाड़ी स्वयं उपस्थित हो. सम्मान लेने के लिए किसी को अपने बदले भेजने से काम नहीं चलेगा. हर खिलाड़ी को अपने आने या न आने की सूचना बहुत पहले ही खेल मंत्रालय को भेजनी होगी. सम्मान लेने के लिए न आने की सूरत में बाद में वह सम्मान खिलाड़ी के घर भेज दिया जाएगा. यह नियम खेल के क्षेत्र में पद्म पुरस्कार, खेल रत्न, अर्जुन पुरस्कार जैसे सम्मानों की स्थिति में भी लागू होगा. गृह मंत्रालय ने भी कह दिया है कि वह इन सिफारिशों पर गंभीरता से विचार करेगा. निश्चय ही ये सिफारिशें पद्म और खेल रत्न जैसे बड़े सम्मानों की प्रतिष्ठा बचाने के लिए बेहद ज़रूरी हैं, लेकिन सवाल है कि क्या खेल मंत्रालय इसके लिए माही और भज्जी की इस ओछी हरक़त का इंतज़ार कर रहा था? और क्या खुद खेल मंत्रालय का यह फर्ज़ नहीं बनता था कि वह अपनी सिफारिशों पर पद्म पुरस्कार पाने वालों की मौज़ूदगी पहले ही सुनिश्चित कर ले. ठीक वैसे ही, जैसे कि पुरस्कारों की घोषणा से पहले विजेताओं से यह पूछ लिया जाता है कि वे स्वीकार करेंगे या नहीं. वैसे, दोनों ने इस आरोप से इंकार किया है कि वे पुरस्कार समारोह वाले दिन दिल्ली में थे या विज्ञापन फिल्मों की शूटिंग कर रहे थे. इसमें कोई दो राय नहीं कि समय के साथ यह मामला रफा-दफा हो जाएगा. क्रिकेटरों के ख़िलाफ़ अदालती मामले भी लंबे खिंचते हुए दम तोड़ जाएंगे. मंत्रालय ने भी दोनों को हड़का दिया है. दोनों क्रिकेटरों की जितनी आलोचना होनी चाहिए थी, वह हो गई. पर क्या मंत्रालय को इस गंभीर मुद्दे को हल्के में लेने के लिए कुछ नहीं कहना चाहिए ?

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

उम्र-द-राज़

कहते हैं कि कुछ राज़, राज़ ही रहें तो अच्छा. अगर बात बॉलीवुड की सबसे ख़ूबसूरत अभिनेत्रियों से जुड़ी हो तो ये राज़ और भी अनमोल हो जाते हैं.

राज़-द मिस्ट्री कन्टीन्यूज़ की अभिनेत्री कंगना राणावत का भी एक ऐसा ही राज़ खुल गया है. हुआ यूं कि कंगना की असली उम्र को लेकर अच्छा ख़ासा विवाद हो गया. हाल में कंगना अपना 23वां जन्मदिन मना रही थीं. तभी मीडिया में यह ख़बर आ गई कि कंगना की असली उम्र 28 है. ख़बरों के मुताबिक, उनके पासपोर्ट पर दर्ज़ उनकी जन्मतिथि यही बतलाती है. अभी कंगना की उम्र को लेकर विवाद चल ही रहा था कि इसी बीच बॉलीवुड की नई सनसनी आसिन की उम्र को लेकर भी कन्फ्यूज़न शुरू हो गया. आसिन के घरवालों का कहना है कि उनकी जन्मतिथि 26 अक्टूबर 1985 है. यानी आसिन भी 23 की हैं. लेकिन आसिन की कई फैन वेबसाइट्स पर उनकी उम्र 25 लिखी है. आसिन ने 2001 में जब फिल्मों में पहला कदम रखा था, तो वह 15 की ही थीं. वैसे बॉलीवुड का यह ट्रेंड भी है. हीरो चाहे जितना भी उम्रदराज़ हो, लेकिन हीरोइन उसे बस सोलहवां सावन ही चाहिए. अभी भी देखिए, अनिल कपूर से लेकर संजू बाबा तक सभी अपनी बेटियों की उम्र की लड़कियों से रोमांस की पींगें बढ़ा रहे हैं. दूसरी ओर हीरोइन 30 की हुई नहीं कि उसके करियर पर ग्रहण लगना शुरू हो जाता है. शायद यही वजह है कि बॉलीवुड की हीरोइनें अपनी असली उम्र बताना ही नहीं चाहतीं. यह बात अलग है कि उनकी परिपक्वता को देखते हुए उनकी कथित उम्र पर भरोसा कम ही होता है. अब यह तो कंगना और आसिन ही जानें कि उनकी असली उम्र क्या है, लेकिन अगर वह उम्र छुपाती भीं हों तो आश्चर्य की कोई बात नहीं है. बॉलीवुड में अभिनेत्री अपनी उम्र कम से कम दिखाना चाहती हैं.

निर्माता पहलाज निहलानी ने उम्र छुपाने की अभिनेत्रियों की इस आदत पर कहा कि बॉलीवुड में हर अभिनेत्री 21-22 की होती है. कंगना और आसिन की उम्र का राज़ जो भी हो, लेकिन कुछ अभिनेत्रियां अपने पासपोर्ट और सर्टिफिकेट छिपाने में लग गई हैं. डर है कि कहीं ये किसी के हाथ लग गए तो उनकी उम्र का राज़ खुल न जाए...

मंदी में भी मस्त हैं बॉलीवुड की हसीनाएं

भारतीय फिल्म इंडस्ट्री बुरे दौर से गुज़र रही है. एक तो आर्थिक मंदी ने परेशान कर रखा था, उस पर अब मल्टिप्लेक्सेज के साथ चल रहे विवाद ने फिल्मों की रिलीज़ पर ही ब्रेक लगा दिया. इस मुश्किल दौर में निर्माता भले ही परेशान हों, लेकिन बॉलीवुड की टॉपअभिनेत्रियों पर मंदी का ख़ास असर नहीं दिखाई दे रहा. उनके पास कई ऐसी फिल्में हैं जो रिलीज़ के लिए बिल्कुल तैयार हैं. नई फिल्में भी ख़ूब मिल रही हैं और जब शूटिंग नहीं हो रही हों तो उनको मिल जाता है अपने पार्टनर के साथ वक्त बिताने का मौका. इनके लिए तो मंदी भी फायदे का समय है. अब बॉलीवुड की नई बार्बी गर्ल कैटरीना कैफ़ की ही बात करें तो उनके पास अभी पांच फिल्में हैं. यशराज बैनर की न्यूयार्क, राजकुमार संतोषी की अजब प्रेम की ग़ज़ब कहानी, प्रकाश झा की राजनीति, एंथनी डिसूज़ा की ब्लू और प्रियदर्शन की दे दना दन. इनकी शूटिंग के बाद अगर कुछ समय बचा तो कैटरीना रैंप पर जलवा बिखेरती नज़र आ जाती हैं. ऐसे में मंदी की क्या मजाल कि कैट के पास भी फटके.

उधर करीना कपूर सैफ के साथ अपना संसार संजोने में व्यस्त तो हैं, लेकिन वह फिल्मों के मामले में भी किसी से कम नहीं हैं. उनकी छह फिल्में अब रिलीज़ होने को तैयारी हैं और फिर करीना विज्ञापनों की दुनिया की भी महारानी हैं.

ऐश्वर्या राय मंदी के मौसम में भी बहुत व्यस्त हैं. तभी तो अपनी शादी की दूसरी सालगिरह पर अभिषेक से मिलने के लिए भी उन्हें बहाना बनाना पड़ा. हुआ यूं कि ऐश्वर्या मणिरत्नम की बीमारी की ख़बर सुन कर शूटिंग छोड़ उनसे मिलने पहुंची. अभिषेक भी पहुंचे. तब किसी ने राज़ खोला कि मणिरत्नम की बीमारी तो बहाना थी. दरअसल अभि और ऐश को सालगिरह के दिन मिलवाने के लिए मणि ने यह आइडिया सोचा था.

प्रियंका चोपड़ा के पास भी फिल्मों की कोई कमी नहीं, वह बड़े बैनरों की चार फिल्मों में काम कर रही हैं. साथ ही शाहिद के साथ उनका दोस्ताना भी ज़ोर पर है. यानी मंदी में प्रियंका का जलवा कम नहीं हुआ है.

तो कुल मिलाकर कहा जाए तो बॉलीवुड की हसीनाएं मंदी में भी हैं मस्त.

आतंक को भुनाएगा बॉलीवुड

ताज होटल में हुए हमले के बाद उसका दौरा करने के लिए भले ही रामगोपाल वर्मा की जमकर फज़ीहत हुई हो, लेकिन कई फिल्मकार हैं जिनको आतंकवाद में एक नया विषय मिल गया. मुंबई हमलों को लेकर बॉलीवुड के छोटे-छोटे निर्माता करीब 15 फिल्में बना रहे हैं. इनमें से टोटल टेन और देशद्रोही-2 जैसी फिल्में रिलीज़ के लिए तैयार भी हैं. जहां छोटे निर्माताओं ने मुंबई हमले को सीधे-सीधे अपना विषय बनाया है, वहीं बड़े बैनर भी आतंकवाद से जुड़े मुद्दों पर फिल्में बनाने में पीछे नहीं हैं. करन जौहर जहां शाहरुख़ ख़ान को लेकर माई नेम इज़ ख़ान बना रहे हैं, जो आतंकवाद और पश्चिमी दुनिया में मुस्लिमों के प्रति फैली हुई मानसिकता के विषय को छूती है. वहीं यशराज बैनर की फिल्म न्यूयार्क भी वर्ल्ड ट्रेड सेंटर की घटना के बाद तीन मुस्लिम छात्रों-जॉन अब्राहम, नील नितिन, इरफान ख़ान-की बदलती जिंदगियों पर आधारित है. उधर रेंडिल डिसूज़ा की जिहाद में सैफ-करीना आतंकवादियों का किरदार निभाते नज़र आएंगे. वैसे सैफ अपनी होम प्रोडक्शन में एजेंट विनोद बनकर आतंकवादियों से मुकाबला करते भी नज़र आने वाले हैं. बॉलीवुड ने इससे पहले भी आतंक को अपना विषय बनाया है, लेकिन मुंबई हमलों के बाद से यह बॉलीवुड का सबसे पसंदीदा प्लॉट बन गया है.

हैरी पॉटर को टक्कर देगा अलादीन

जल्द ही भारत में सिनेमा प्रेमियों को स्पेशल इफेक्ट्स का ज़ोरदार मुकाबला देखने को मिलेगा. जहां हैरी पॉटर सीरीज़ की छठी फिल्म हैरी पॉटर एंड द हाफ ब्लड प्रिंस 17 जुलाई को भारतीय सिनेमाघरों में आएगी, वहीं एक हफ्ते बाद सुजोय घोष की अलादीन रिलीज़ होगी. हैरी पॉटर सीरीज़ की फिल्में अपने बेहतरीन इफेक्ट्स के लिए मशहूर हैं, हैरी पॉटर की छठी फिल्म में और शानदार इफेक्ट्स देखने को मिलेंगे. फिल्म के ट्रेलर और प्रोमो पहले से ही धूम मचा रहे हैं. यह फिल्म पिछले साल ही आने वाली थी, लेकिन उसकी रिलीज़ टल गई थी. अब हैरी के दीवाने एक साल से इस फिल्म का बेसब्री से इंतज़ार कर रहे हैं.

उधर अलादीन पूरी तरह से भारतीय फिल्म है. फिल्म में अमिताभ बच्चन, रितेश देशमुख और संजय दत्त जैसे बड़े सितारे हैं. वैसे फिल्म की सबसे बड़ी ख़ासियत हैं इसके इफेक्ट्स. कहा जा रहा है कि इफेक्ट्स के मामले में यह फिल्म लॉर्ड ऑफ द रिंग्स और हैरी पॉटर को टक्कर देगी. इसे 24 जुलाई को रिलीज़ करने की योजना है. मज़ेदार बात है कि फिल्म बनाने वाली इरोस इंटरनेशनल ने इसका सीक्वल बनाने की घोषणा पहले ही कर दी है.

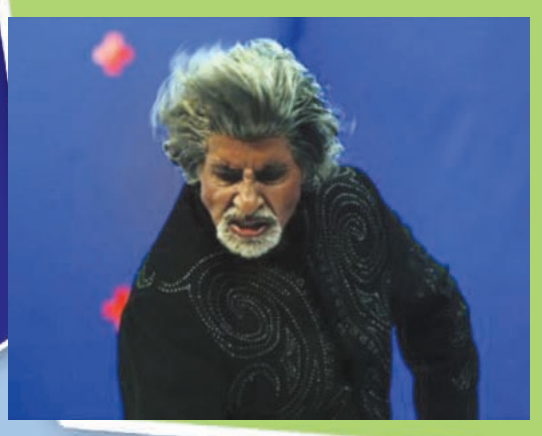

यानी उन्हें फिल्म की सफलता पर पूरा भरोसा है. अब एक साथ पर्दे पर आ रही हैरी पॉटर और अलादीन की टक्कर तो होनी ही है. इस मुकाबले में जीत देसी जादू (अलादीन) की हो या विदेशी मैजिक (हैरी पॉटर) की, इतना तो तय है कि दर्शकों के दोनों हाथों में लड्डू रहेगा.

रोहित : रीमेक के अमिताभ

शूटआउट एट लोखंडवाला से दर्शकों के दिलों में ज़गह बना लेने वाले रोहित रॉय आजकल बहुत खुश हैं. हों भी क्यों नहीं, अपनी अगली फिल्म में महानायक अमिताभ बच्चन वाला किरदार जो निभा रहे हैं.

जी हां, रोहित अपनी आने वाली फिल्म-पा मा गा रे सा-में अमिताभ का किरदार निभा रहे हैं. यह फिल्म बॉलीवुड की सुपरहिट फिल्म रही अभिमान का बांग्ला रीमेक है. रोहित रॉय की यह पहली बांग्ला फिल्म है.

सुरजीत धर द्वारा निर्देशित यह फिल्म एक म्यूजिकल लव स्टोरी है. इसमें रोहित रॉय के अलावा गौरी कार्णिक और पूर्व मिस इंडिया अर्थ-रेशमी घोष भी नज़र आएंगी. फिल्म के कई सीन पहले ही शूट किए जा चुके हैं और बाकी फिल्म पूरी करने के लिए रोहित रियलटी शो-झलक दिखला जा-के ख़त्म होते ही कोलकाता चले जाएंगे.

बतौर एक्टर तो रोहित रीमेक में काम कर ही रहे हैं, निर्देशक के रूप में भी रोहित 1981 की मशहूर फिल्म *शौकीन* का रीमेक बनाने की सोच रहे हैं. इस फिल्म में जहां उस समय निर्देशक बासु चटर्जी ने अशोक कुमार, उत्पल दत्त और एके हंगल जैसे धुरंधरों को ज़गह दी थी, वहीं इस बार रोहित अपनी फिल्म में बोमन ईरानी, ऋषि कपूर और नसीरूद्दीन शाह जैसे अदाकारों को लेने वाले हैं.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com